निर्मल वर्मा के कथा–साहित्य में प्रेम की परिकल्पना

(पी–एच.डी. की उपाधि के लिए
प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध)

शोध–निर्देशक
प्रो0 केदारनाथ सिंह

शोध–कर्त्ता
कृष्णमोहन झा

भारतीय भाषा–केन्द्र
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्याल
नई दिल्ली – 110067

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI-110067

18 जून 1999

प्रमाण - पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री कृष्णमोहन झा द्वारा प्रस्तुत "निर्मल वर्मा के कथा-साहित्य में प्रेम की परिकल्पना" शीर्षक शोध-प्रबन्ध में प्रस्तुत सामग्री का इस विश्वविद्यालय अथवा अन्य कि विश्व-विद्यालय में इससे पूर्व किसी भी प्रदेय उपाधि के लिए उपयोग नहीं किया गया है ।

यह शोध-प्रबंध कृष्णमोहन झा की मौलिक कृति है ।

प्रो० केदारनाथ सिंह
शोध-निर्देशक
भारतीय भाषा केन्द्र
भारतीय भाषा साहित्य एवं संस्कृति
अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110 067

प्रो० नसीर अहमद खान
अध्यक्ष
भारतीय भाषा केन्द्र
भारतीय भाषा साहित्य एवं संस्कृति
अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110 067

GRAM : JAYENU TEL. : 667676, 667557 TELEX : 031-73167 JNU IN FAX : 91-011-6865886

मैं अरसा पहले दिल्ली के चिड़ियाघर के एक पिंजरे में चीते को देखा था । लगभग सौ गज लंबा पिंजरा था, जिसमें वह घूम रहा था, एक तरफ से दूसरी तरफ और फिर वापिस - वहीं - जहां से उसने दौड़ शुरू की थी । वह न चल रहा था, न भाग रहा था - सिर्फ एक बिजली थी, जो पिंजरे के एक छोर से दूसरे छोर तक लपलपाती हुई कौंध जाती थी । वह पिंजरे को नहीं समझ पा रहा था, न आसपास की दुनिया को, न मुझे जो उसे देख रहा था - उसकी बेचैनी अंतहीन थी, एक अंधी हताशा, बेकाबू विक्षिप्त आंधी में वह जैसे अपनी खोई हुई प्रकृति के खजाने को ढूंढ़ रहा था ।

- निर्मल वर्मा

`धुंध से उठती धुन` में

ये इश्क नहीं आसाँ

प्रेम करना जितना सहज और स्वभाविक है उस पर गम्भीरतापूवर्क विचार करना उतना ही कठिन। इस कठिनाई का कारण खुद हमारी भाषा और मनुष्यनिर्मित वह तर्क–प्रणाली है जिसके पास सृष्टि की सभी चीजों को जाँचने, परखने और विश्लेषित करने का अहंकार है, शायद। तर्क हमरी सामर्थ्य भी है और सीमा भी। जो चीजें इसकी लपट में आने से रह जाती हैं, उनमें प्रेम भी है – वही प्रेम – जो "हम एक दूसरे से करते हैं, या फिर नहीं करते।" प्रेम अतर्क्य है। पता नहीं वह कौन सा क्षण होता है जिसमें वह पैदा होता है और कौन सी वह परिस्थिति होती है जिसमें वह झर जाता है।

इसके बावजूद कि फ्रायड, सार्त्र, किर्केगार्द, तालस्तोय, रिल्के, महर्षि अरविंद, रमण महर्षि, गांधी, रविन्द्रनाथ ठाकुर, निराला आदि चिन्तकों–लेखकों ने समय–समय पर प्रेम को परिभाषित करने का प्रयत्न किया है, लेकिन इन चेष्टाओं के परे वह अबूझ, अतर्क्य और रहस्यमय बना रहा है, बना हुआ है। प्रश्न यह उठता है कि मैं अपने ज्ञान (?) की अकिंचनता को जानते हुए भी क्यों उसके सामने आकर खड़ा हो गया हूँ ! उत्तर है – जिज्ञासा – अपने युग के मनुष्य को समझने की जिज्ञासा। जिस तरह ऋतुओं के बदलने की सूचना सबसे पहले पानी और हवा से मिलती है उसी तरह मनुष्य के आत्मबोध (और विश्वबोध) में आए परिवर्तन के पदचिन्ह सबसे पहले उसके निजी और निष्कवच सम्बन्धों में देखे जा सकते हैं। ठीक यहीं आकर– और इन्हीं कारणों से– निर्मल वर्मा हमारे समय के अत्यन्त महत्वपूर्ण लेखक साबित होते हैं। अपने समय और उसके "टेरर" की गहरी पहचान वे मनुष्य के निजी और आत्मीय संसार में उद्घाटित करते हैं।

निर्मल वर्मा को यों काफी दिनों से पढ़ता रहा हूँ, और उनके प्रभाव में निरन्तर बना भी रहा हूँ, लेकिन उन पर काम करना मेरे लिए आसान नहीं रहा है। प्रेमी होना अलग बात है और उस प्रेम का विश्लेषण करना बिल्कुल दूसरी बात । इस लिए इस शोध–प्रबन्ध के बारे में सिर्फ यही कह सकता हूँ– सत्य कहऊँ लिखि कागज कारे।

इस प्रसंग में अपने गुरु प्रो0 केदार नाथ सिंह के प्रति आभार व्यक्त करना मुझे निहायत औपचारिक लगता है। वे मेरे लिए एक "शोध–निर्देशक" से बहुत अधिक महत्वपूर्ण रहे हैं। उन्होंने अपने ममत्व और ज्ञान से जे0एन0यू0 में बिताये गये मेरे वर्षों कों आलोकित किया है और भविष्य के लिए प्रेरणा दी है।

इस अवसर पर मैं अपने अनन्य मित्र राकेश पाण्डेय, अविनाश झा, नयना–रविश, अविनाश कुमार, संजय और राकेश को याद किए बिना नहीं रह सकता। जे0एन0यू0 में इन सबने मिलकर मेरे लिए एक आत्मीय संसार बनाया है। पता नहीं ये न होते तो मैं कहाँ–किस तरह होता।

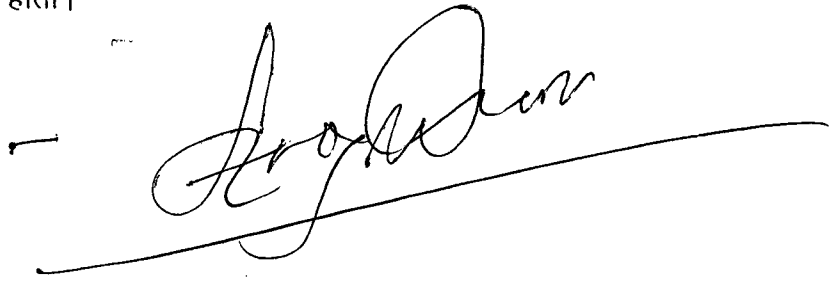

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय — 1 - 28

आधुनिक कथा साहित्य में प्रेम की अवधारणा

आधुनिक कथा साहित्य, प्रेम का आधुनिक भाव-बोध, भाव-बोध का विकास ।

द्वितीय अध्याय — 29 - 47

निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का स्वरूप :

नई कहानी आन्दोलन में चित्रित स्त्री-पुरुष सम्बन्ध, स्त्री-पुरुष सम्बन्ध : पति-पत्नी, स्त्री-पुरुषों का विवाह पूर्व सम्बन्ध, विवाहेतर सम्बन्ध ।

तृतीय अध्याय — 48 - 66

निर्मल वर्मा का आधुनिकता बोध और प्रेम

आधुनिकता, आधुनिकतावाद, हिन्दी साहित्य में आधुनिकता पर बहस, नई कहानी और आधुनिकता-वाद, आधुनिकतावाद और प्रेम, प्रेम की व्याख्या, प्रेम की स्थितियां, मिथक ।

पृष्ठ संख्या

चतुर्थ अध्याय 67 - 88

निर्मल वर्मा के प्रेम के चित्रण में पाश्चात्य और भारतीय मूल्यों का द्वन्द्व

प्रेम की पाश्चात्य अवधारणा, भारतीय दर्शन में प्रेम की अवधारणा, प्रेम और निर्वाह, प्रेम की नैतिकता ।

पंचम अध्याय 89 - 112

निर्मल वर्मा का कथा साहित्य : मनुष्य का अकेलापन और प्रेम की विडम्बना

अलगाव और अकेलापन, आत्मपीड़ा, अजनबीपन, स्मृति में घर, प्रेम की असंभवता , प्रेम की परिणति ।

षष्ठ अध्याय 113 - 129

निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में प्रेम के चित्रण का स्थापत्य

परिवेश, भाषा संगीतमयता, प्रेम के रूपक ।

ग्रन्थानुक्रमणिका 130 - 135

पहला अध्याय

आधुनिक कथा-साहित्य में प्रेम की परिकल्पना

आधुनिक कथा-साहित्य में प्रेम की परिकल्पना

औद्योगीकरण, तकनीकी प्रगति, वैज्ञानिक प्रगति आदि के साथ मोटे तौर पर 'आधुनिक' शब्द जुड़ा हुआ है। लेकिन कलाओं के साथ जब हम आधुनिकता की बात करते हैं तब उसके भिन्न अर्थ होते हैं। 'आधुनिकता' विशुद्ध भौतिक संदर्भ में, हमारे जीवन में वह बदलाव है जो विज्ञान और औद्योगीकरण की वजह से आया है : आधुनिक कला एक माने में उस बदलाव के साथ नए, कलापूर्ण और सार्थक रिश्तों की खोज है। इस अर्थ में आधुनिकता अपने आप में एक मूल्य होने के बजाय एक खास जगह पर खड़े हो कर जीवन-जगत को देखने की एक दृष्टि है। आधुनिक यथार्थ-बोध का मूल आधार भौतिक है : जानने समझने की विधियां भी अधिकांश वे ही हैं जिनसे हम अपने भौतिक जगत के बारे में जानकारियां प्राप्त करते हैं। तर्क, विश्लेषण, बौद्धिकता, वर्गीकरण, प्रमाण, परिगणना आदि से जिस सच्चाई को हम सिद्ध नहीं कर पाते, उसके प्रति आधुनिक मन शंकालु बना रहता है।[1]

आधुनिकता शब्द का रचनात्मक आशय वर्तमान को केन्द्र में रखते हुए अतीत और भविष्य के प्रति भी सचेत रहना है, इसलिए 'समकालीन', 'प्रत्यक्ष' या 'तत्कालीन' जैसे शब्दों के साथ भी इसके गहरे और सतही दोनों सम्बन्ध हैं। भारतीय संदर्भ में जब हम आधुनिकता पर विचार करते हैं तो इसकी व्यंजना को 'अस्तित्वगत स्वातंत्र्य की खोज' के रूप में ग्रहण कर सकते हैं। प० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने आधुनिकता के तीन लक्षणों को रेखांकित किया है --

---

1. कुंवर नारायण - आज और आज से पहले

1. इतिहास बोध
2. इहलोक में ही कल्याण होने की आस्था
3. व्यक्तिगत कल्याण की जगह सामूहिक कल्याण की एषणा

इन तीनों लक्षणों को ध्यान में रखते हुए यदि हम हिन्दी नवजागरण काल पर विचार करें तो स्वाभाविक रूप से गांधी सामने आते हैं और ये तीनों तत्व जैसे गांधी के व्यक्तित्व की रूपरेखा बन कर उभरते हैं । एक तरह से गांधी जी का सम्पूर्ण जीवन दर्शन प्रेम का दर्शन है और इस क्रम में उन्होंने प्रेम को जो अर्थ दिया, वह अलग, अलौकिक न होकर जीवन जीने की एक स्वाभाविक तथा आंतरिक कला है । अहिंसा के अन्तर्गत गांधी जी ने जो जीवन धारणा की व्याख्या की, उसी में उनकी प्रेम सम्बन्धी अवधारणा भी पूरी तरह व्यक्त हो जाती है । गांधी जी के लिए स्त्री, अहिंसा, प्रेम और करुणा ये सब एक सीधी लकीर में विकसित होने वाली शक्तियां हैं । स्त्री अहिंसा का अवतार है । अहिंसा का अर्थ है असीम प्रेम और करुणा और प्रेम का अर्थ है सहने की असीम शक्ति ।

इस परिभाषा के केन्द्र में प्रेम है जो कष्ट सहने की शक्ति तथा अहिंसा दोनों को परिभाषित करता है । प्रेम के बिना न अहिंसा सम्भव है और न प्रेम के बिना कष्ट सहने की क्षमता ही विकसित हो सकती है । प्रेमी के लिए कष्ट सहने में जिस त्याग अथवा उत्सर्ग का संकेत है, वही पीड़ा तथा अहिंसा इस प्रेम को सार्वजनिक बनाती है अर्थात् सबसे प्रेम और सबके लिए कष्ट सहने की शक्ति । प्रेम त्याग से ही पैदा होता है । ... शुद्ध प्रेम देह का नहीं आत्मा का ही सम्भव है । देह का प्रेम विषय का ही है ... प्रेम की शक्ति वही है जो आत्मा पर सत्य की शक्ति है ।

प्रेम सम्बन्धी इन विचारों की व्याख्या करें तो गांधी जी की दृष्टि से प्रेम स्वरूप कुछ ऐसा सामने आता है - प्रेम का तात्पर्य है सत्य से प्रेम और सत्य उस आत्मा का ही प्रतिरूप है जो सब में है । अर्थात् सच्चा प्रेम वह है जो सबसे हो । सब की आत्मा हो । इस प्रेम का तात्पर्य है सब के लिए कष्ट सहना । गांधी जी प्रेम को धनात्मक वृत्ति मानते हैं, जिसका उद्देश्य है सम्पूर्ण विश्व में आत्मिक एकता स्थापित करना । पारंपरिक त्याग प्रेम को किसीप्रकार ऋणात्मक नहीं बनाता क्योंकि वह पारंपरिक आदान प्रदान के द्वारा प्रेम को निरंतर गतिशील तथा संतुलित रखता है । इसके अतिरिक्त गांधी यह मानते हैं कि प्रेम मुख्य रूप से स्त्रैण गुण है क्योंकि प्रेम करने की क्षमता स्त्री में पुरुष से अधिक होती है । अत: पुरुष के प्रेम में पूर्णता तभी आ सकती है जब वह स्त्री की तरह प्रेम को अपनाए । गांधी जी का आदर्श अर्धनारीश्वर की परिकल्पना है ।[1]

मूलत: गांधी जी की दो विशेषताएं उन्हें आधुनिक पुनर्जागरण के शीर्ष पर प्रतिष्ठित करती हैं । एक तो सार्थक सन्दर्भों में विभिन्न विचारों का मिश्रण नहीं, बल्कि संश्लेषण प्रस्तुत करना, और दूसरे उन्हें केवल विचारों या धारणाओं के स्तर पर ही न छोड़ कर कर्म के साथ एकाकार कर देना । गांधी जी ने प्रेम के आदर्शों को न तो सरलीकृत किया, न ही उसे वायवीय बनाया, केवल उन्हें रचनात्मक आधार देकर क्रियाशील कर दिया ।

यही कारण है कि गांधी जी की इस प्रेम-धारणा का प्रभाव हिन्दी साहित्य पर और विशेष करके कथा-साहित्य पर गहरे पड़ा ।

---

1. विजयमोहन सिंह - हिन्दी उपन्यास और प्रेम सम्बन्ध

यह अपूर्व घटना थी । अभी तक उपन्यासों में केवल अधूरा पुरुष या अधूरी स्त्री देखने को मिली थी । स्त्रियों की तेजी से घर से बाहर निकलने तथा पुरुषों के साथ आजादी के आन्दोलन में कूद पड़ने की इस गति ने सम्बन्धों में एक गहरी हलचल पैदा कर दी । स्वतन्त्रता को धुरी बना कर गांधी जी ने देश को जिस चुम्बकीय आकर्षण से एक कर दिया था, वह अभूतपूर्व था । अत: हिन्दी उपन्यासों के सामने अपार सम्भावनाओं से भरा हुआ यह अभूतपूर्व अवसर था ।

स्त्रियों के लक्ष्ययुक्त सार्वजनिक जीवन ने स्त्री विषयक तथा स्त्री-पुरुष विषयक धारणाओं में पर्याप्त संतुलन की भी मांग की । साथ-साथ कर्मक्षेत्र चुनने तथा काम करने की प्रक्रिया में आंतरिक विशेषताएं भी उभरकर सामने आईं और इस नई वास्तविकता को भी कई उपन्यासकारों और कहानीकारों ने बड़ी तीव्रता और मार्मिकता के साथ अनुभव किया। गांधी जी ने अपनी प्रेम-सम्बन्धी मान्यताओं में सिर्फ दैहिकता को पूरी तरह अस्वीकार किया और विवाह जैसे सम्बन्धों में भी ब्रह्मचर्य, संयम तथा आत्मा की महत्ता का बखान किया ।

`विवाहित होने पर भी ब्रह्मचर्य का पालन किया जाय तो परिवार कभी समाज विरोधी न बने... विवाह जिस आदर्श तक पहुंचाने का आदर्श रखता है, वह है शरीरों के संयोग द्वारा आत्मा का संयोग साधन । विवाह जिस प्रकार प्रेम को मूर्त रूप प्रदान करता है, उसे दिव्य प्रेम अथवा विश्व-प्रेम की दिशा में आगे बढ़ने की सीढ़ी बन जाना चाहिए ।`

`प्रेमचन्द के लगभग सभी उपन्यासों में जब स्त्री-पुरुष एक दूसरे के सामने आते हैं तो वे स्त्री-पुरुष न होकर दो भूरम्य होते हैं - दो परम्पराएं होते हैं । इसी तरह इन उपन्यासों में प्रेम दो व्यक्तियों का सम्बन्ध नहीं होता । वे प्राय: परस्पर विरोधी गुणों के चरित्र

होते हैं और उनमें एक मौलिक विरोध बराबर बना रहता है । प्रेमचन्द जिन सम्बन्धों को आदर्श समझते हैं उनकी परिणति विवाह में दिखाकर पर्यवसान कर देते हैं - वरना उनके विरोधी गुणों की टकराहट दिखा कर उन्हें पृथक् कर देते हैं । सेवासदन में सदन और सुमन का प्रेम होता ही विरोधपूर्ण प्रेम है । सुमन दहेज प्रथा तथा अनमेल विवाह का शिकार होकर वेश्या-जीवन भोग रही है । अत: ऐसी स्त्री को हिन्दू-समाज जिस तरह प्रेम का अधिकार नहीं देता, उसी परम्परा का अनुसरण करते हुए प्रेमचन्द सदन का प्रेम सुमन से हटा कर उसकी बहन शान्ता की ओर स्थानांतरित कर देते हैं और सुमन को वेश्या जीवन से हटा कर सेवासदन के लिए सुरक्षित कर दिया जाता है । यह प्रेम की कथित सात्विक और उदात्त परिणति है जिनके हिमायती प्रेमचन्द यहां दिखाई पड़ते हैं ।[1]

ऐसा क्यों ? इस पर अगर विचार किया जाय तो कई बातें सामने आती हैं । एक तो प्रेमचन्द जिस सामाजिक सुधारवाद के अन्तर्गत समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना चाहते हैं, वहां प्रेम की यही परिणति हो सकती थी । सामाजिक समस्याओं की एक कार्यकारणबद्ध शृंखला वहां है जिसमें प्रेम एक आयोजित कड़ी के रूप में सामने आता है और उसी के भीतर एक सुनियोजित परिणति तक पहुंचा दिया जाता है । दरअसल सदन की सुमन से मुलाकात और उसका एक सीमा तक विकास दिखाने का उद्देश्य प्रेम चित्रण नहीं है, बल्कि उस योजना का छोटा सा हिस्सा है जिसके अन्तर्गत यह दिखाना उद्देश्य है कि प्राय: बड़े घरों के दुलार से बिगड़े हुए कम उमर के लड़के वेश्या-वृत्ति के शिकार हो जाते हैं । इस सम्बन्ध के बीच सुमन की सदन के प्रति एक अत्यंत कोमल तथा अतृप्त आकर्षण भी दिखाई पड़ता है ।

---

1. विजयमोहन सिंह - हिन्दी उपन्यास और प्रेम सम्बन्ध

लेकिन लेखक जल्दी ही अपनी आयोजित कथा-शृंखला के दूसरे चरण में कूद पड़ता है, इसलिए सदन-सुमन का सम्बन्ध अस्वाभाविकता के बीच ही में तोड़ दिया जाता है । इस घटना जाल में किसी प्रेम-सम्बन्ध के विकसित होने का प्रश्न ही नहीं उठता । इसलिए प्रेमचन्द के उपन्यासों में प्रेम का वर्णन तो मिलता है : चित्रण नहीं मिलता । चरित्रों के भीतर जाकर वे प्रेम का चित्रण शायद ही कभी करते हैं ।

सेवासदन में प्रेम के इस रूप में प्रस्तुत होने का दूसरा कारण है - लेखक की सामाजिक दृष्टि-सीमा । प्रेमचन्द प्रचलित प्रेम सम्बन्धी मान्यताओं को तोड़कर आगे नहीं बढ़ते । सुमन का दूसरा विवाह उन्हें स्वीकार नहीं है । एक बार अनमेल विवाह करके वेश्या जीवन बिताने वाली स्त्री पुनः स्वतंत्र रूप से प्रेम या विवाह करके औरत होने की स्वाभाविक स्थिति में नहीं आ सकती । न प्रेमचन्द को सुमन का अपने से कम उम्र के लड़के के साथ ही प्रेम सम्बन्ध स्वीकार है ।

यहां स्पष्ट है कि प्रेमचन्द प्रचलित मान्यताओं को बिना आघात पहुंचाए अपनी रचनात्मकता की कीमत पर प्रेम को एक स्वीकृत तथा सुरक्षित परिणति तक पहुंचा देते हैं : सदन सुबह के भूले राम को घर लौटकर शान्ता से विवाह करके सुखी तथा सफल जीवन बिताने लगता है । डा० विजयमोहन सिंह के शब्दों में, 'इससे यह भी सिद्ध होता है कि प्रचलित मान्यताओं के तथावत निर्वाह की प्रवृत्ति साहित्यिक नुस्खों को जन्म देती है और यह काम बिना रचनात्मकता को क्षति पहुंचाए नहीं हो सकता ।'[1]

सुमन-सदन सम्बन्ध में - सुमन का सदन के प्रति दृष्टिकोण वैसा ही है जैसा एक प्रौढ़ तथा अनुभवी महिला का एक किशोर के प्रति होता है - उसके भीतर से सुमन की प्रेम अतृप्ति भी झांकती रहती है और सदन के

---

1. विजयमोहन सिंह - हिन्दी उपन्यास और प्रेम सम्बन्ध

माध्यम से उसे उस बाज़ार के बाहर के प्रेम का अनुभव भी होता है । '...सदन को देखे बिना उसे चैन न पड़ता, उसका हृदय दिनोंदिन उसकी ओर खिंचता जाता था... किन्तु इस प्रेम को वह अनुचित और निषिद्ध समझती थी, उसे छिपाती थी... इस प्रेम की कल्पना में उसे जो आनन्द मिलता था, उसका त्याग करने में वह असमर्थ थी ।'

प्रेम के सम्बन्ध में प्रेमचन्द का यह संकोच उनके आगे आनेवाले उपन्यासों में भी बना रहता है । वे स्त्री-पुरुष के सीधे सम्बन्धों को प्राय: टालते हैं । यौन सम्बन्धों को लेकर तो वे प्राय: भयभीत हैं, उसे प्रेम क्षेत्र की लक्ष्मण रेखा से बाहर ही रखते हैं ।

रंगभूमि में जो प्रेम-चित्रण है, वह इस अवधारणा से उत्प्रेरित है कि प्रेम सारे विरोधों और विरोधाभासों को मिटा सकता है । प्रेम इस दृढ़ आस्था को आधार मान कर ही उपन्यास में विनय तथा सोफिया के प्रेम को केन्द्र बनाया गया है और उसके द्वारा सुधारवादी आन्दोलन और स्वतंत्रता आंदोलन को गति दी गई है ।लेकिन सचाई यह है कि ये बातें विचित्र अन्तर्विरोधों में उलझी रह गयी हैं और यही कारण है कि समसामयिक परिवेश के बावजूद उपन्यास में मध्ययुगीन दृष्टिकोण और वातावरण ही प्रधान रहता है और इसीलिए रंगभूमि की प्रेम धारणा भी आत्मोसर्ग और शौर्यप्रदर्शन की मध्ययुगीन परम्परा पालन करके ही रह गई है ।

इस प्रेम की शुरुआत भी भावुकता प्रधान शौर्यप्रदर्शन के एक रूढ़ दृश्य से होती है । विनय स्वयं अपने स्वयंसेवक दल के सुरक्षा प्रदर्शन में आग से घिर जाता है और ऐन मौके पर सोफिया वहां पहुंच कर अपनी जान को खतरे में डाल कर उसकी रक्षा कर लेती है । प्रेम का बीज यहीं पड़ जाता है । फिर दोनों परिवारों की सामाजिक मर्यादा बीच में आती है, विनय के

राजघराने की गौरवपूर्ण परम्परा आड़े आती है और एक बार दोनों प्रेमी एक दूसरे से सौ मील दूर उछाल दिए जाते हैं । लेकिन सोफिया अपने नारी सुलभ कौशल और रूपमाधुर्य का सहारा लेकर विनय के पास पहुंच जाती है । लेकिन तब शारीरिक न रहने पर भी भावना और कर्तव्य का द्वन्द्व शुरू होता है जो किसी न किसी रूप में अंत तक बना रहता है तथा जिसका पर्यवसान विनय के आत्मोत्सर्ग तथा सोफिया की आत्महत्या में होता है ।

इस सन्दर्भ में जिन अन्तर्विरोधों की चर्चा की गई है, उन्हें सामने लेकर इस प्रेम-धारणा को ज्यादा अच्छी तरह से समझा जा सकता है । इस अन्तर्विरोध का एक छोर तो यह है कि एक तरफ प्रेमचन्द का उद्देश्य सुधारवादी परिवेश में प्रेम के द्वारा साम्प्रदायिकता की समस्याओं को सुलझाना है, लेकिन यह दृष्टिकोण ही अनेक विसंगतियों का शिकार हो गया है । मसलन विनय तथा सोफिया दोनों अपने-अपने धर्म की रूढ़ियों से विद्रोह करते हैं, लेकिन दोनों में इस विद्रोह की क्षमता अत्यल्प है । विनय तो निरन्तर मातृमय की ग्रंथि से पीड़ित रहता है और दोनों के भीतर प्रेम सम्बन्धी अनेक अंध विश्वास हैं । अत: रंगभूमि में यह प्रेम अपराध-बोध के स्तर से ऊपर नहीं उठता और उसके प्रेमियों को अपना प्रेम प्राय: हर मान्यता के विरोध में खिसकता पड़ता है । एक ओर वह अत्यंत पवित्र, शाश्वत तथा महान् प्रतीत होता है और दूसरी ओर देश, कर्म, संघर्ष तथा परिवार के सन्दर्भ में अवैध भी प्रतीत होता रहता है । विनय तथा सोफिया का असली संघर्ष अपने भीतर के इस अपराध बोध से ही है जिससे अंत तक वे छुटकारा नहीं पाते और प्रत्येक अपराध-बोध की तरह इसका अंत भी आत्म-घात में होता है ।

प्रेम के विरुद्ध और इसके साथ ही अपने विरुद्ध यह संघर्ष केवल शारीरिक स्तर पर है । विनय तथा सोफिया मानसिक तथा मौखिक रूप

से एक दूसरे को सर्वस्व अर्पित कर चुके हैं - 'टैबू' सिर्फ शरीर सम्पर्क के लिए ही है । सोफिया क्लिय को सब कुछ दे चुकी है, सिर्फ शरीर देना नहीं चाहती । प्रेम के क्षेत्र का यह विचित्र विरोधाभास है जिसे हिन्दी उपन्यासों ने प्राय: बिना किसी संदेह के प्रश्रय दिया है । शरीर को हमेशा तुच्छ माना गया है, लेकिन सबसे अधिक हीला-हवाला और द्वन्द्व शरीर-सम्पर्क को लेकर ही उपस्थित किया जाता है । मन अर्पित है, सर्वस्व समर्पित है, लेकिन शरीर सुरक्षा का इतना अधिक ध्यान आश्चर्य में डालने वाला है । यदि शरीर तुच्छ और कम महत्वहीन है तो उसे देने में इतना द्वन्द्व क्यों ?

क्लिय तथा सोफिया राजस्थान के एक भील गांव में शहर, सभ्यता तथा शिक्षा से दूर एकांत वास करते हैं - पहाड़ी अंचल, भीलों का भोला तथा सरल आतिथ्य सारी बाधाओं से दूर प्रेम के लिए एक स्वाभाविक और आदर्श स्थान । सैकड़ों मील की दूरी तय करने के बाद और अनेक आपदाओं से गुजरने के बाद जिनमें जेल की दीवारें, पिस्तौल की गोलियां, परिवार तथा राजकोप सबकुछ शामिल है - प्रेमी युगल पहली बार उन्मुक्त तथा बाधाहीन होकर आमने सामने है । रंगभूमि के पूरे प्रेमाख्यान में वास्तविक प्रेम चित्र यही है जहां प्रेमचन्द ने अपने स्वभाव के विपरीत काफी दूर तक प्रेम के सूक्ष्म स्पन्दनों को व्यक्त किया है । भावावेग तथा मौन-आवेग की तीव्रता को व्यक्त करनेवाला यह ही दृश्य अपनी पृष्ठभूमि के साथ अत्यन्त काव्यात्मक भी है । यहां प्रेमचन्द परम्परागत प्रेम धारणाओं से हल्का-सा अलगाव भी दर्शाते हैं । परम्परागत प्रेम कथाओं के नायक-नायिका समस्त बाह्य-बाधाओं के बाद एक हो जाते हैं - यही इन कथाओं की परिणति होती है । लेकिन प्रेमचन्द का उद्देश्य यह दिखलाना है कि प्रेम में असली बाधा बाहरी नहीं भीतरी है । इसी कारण मानसिक रूप से एक होकर भी प्रेमी-युगल शारीरिक सम्बन्ध की दृष्टि से अभी अपरिचित है । शरीर-

सम्बन्ध स्थापित करने में बाधा क्लिय की ओर से नहीं, सोफिया की ओर से है, क्योंकि प्रेमचन्द इस मामले में हमेशा स्त्री को पुरुष से अधिक शक्तिशाली मानते हैं ।

चाहे शारीरिक सम्बन्ध हो चाहे विवाह, दोनों के लिए प्रेमचन्द के यहां सामाजिक-स्वीकृति आवश्यक है । स्पष्टता इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सामाजिक स्वीकृति के बिना प्रेम ही सम्भव नहीं है, क्योंकि उसके बिना प्रेम की अभिव्यक्ति और विकास के सारे रास्ते बन्द हैं ।

इस प्रकार प्रेमी-प्रेमिका एक दूसरे से मिलने के लिए जो ज़मीन-आसमान एक करते हैं - विपत्तियों से लड़ते हैं, वह सब व्यर्थ है क्योंकि ये जिनके विरुद्ध लड़ रहे हैं, वे सामाजिक मान्यताएं ही हैं, बल्कि वर्जनाएं हैं । और चूंकि अन्तत: उन्हें सामाजिक मान्यताओं की स्वीकृति से ही कोई अंतिम निर्णय लेना है, इसलिए एक स्तर पर उन मान्यताओं के खिलाफ़ होना कोई अर्थ नहीं रखता ।

प्रेम को प्राय: सभी छायावादी साहित्यकारों ने अपनी रचना-सामग्री बनाई, अपना विषय बनाया । इस तरह के प्रेम का प्रधान लक्ष्य नारी को गौरवान्वित करना था । स्वयं यह कार्य प्रसाद जी ने कामायनी के माध्यम से बड़े फलक पर दिखाया था । `तितली` में भी उन्होंने यही किया है, लेकिन `तितली` का आधार अधिक ठोस और वस्तुगत है । `तितली` में नारी की केन्द्रीयता उसकी आर्थिक मुक्ति से जुड़ी हुई है और तितली की प्रेम-धारणा नारी की इस आर्थिक मुक्ति के सन्दर्भ में ही निर्मित होती है ।

तितली का प्रेम जिन सन्दर्भों में निर्मित हुआ है, उसका एक आयाम यह है कि यह ग्राम-सुधार आन्दोलन, संयुक्त परिवार की समस्याओं तथा सामंतवादी सामाजिक संरचना की पतनोन्मुख स्थितियों को भी सामने लाता

है । `गोदान` के बाद `तितली` में हम यह स्पष्टत: देख सकते हैं कि प्रेम, जो अब तक सिर्फ नैतिक प्रश्नों से जुड़ा हुआ था, क्रमश: आर्थिक प्रश्नों से जुड़ता जाता है ।

आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद ही शैला इन्द्रदेव के साथ परिणय-सूत्र में बंधती है । प्रसाद जी के यहां इस आर्थिक स्वतंत्रता का महत्व इतना अधिक है कि इन्द्रदेव भी शैला से तभी विवाह करता है, जब वह अपनी पैतृक सम्पत्ति, जो शोषण के षडयंत्रों पर आधारित है, से मुक्त होकर स्वावलम्बी बन जाता है । लेकिन इन्द्रदेव तथा शैला के संबंधों में हिचक केवल आर्थिक कारणों से नहीं है । यह जाति और सम्प्रदाय की मौलिक भिन्नता के कारण भी है । शैला हिन्दू धर्म में दीक्षित हो जाती है, वह नियमित रूप से बाबा रमानाथ के यहां हितोपदेश पढ़ने जाती है । इस तरह भारतीय संस्कृति को अपना कर वह इन्द्रदेव के निकट आना चाहती है । लेकिन इसके बावजूद अपने मन में वह अंत तक स्पष्ट नहीं हो पाती कि वह इन्द्रदेव से प्रेम करती है या नहीं । क्या वह इन्द्रदेव को चाहती है ?

प्रसाद में हिन्दू दार्शनिकता विशेष रूप से मुखर है : वे पहले शैला को तितली के पिता रमानाथ के द्वारा हिन्दू-धर्म में दीक्षित कराते हैं और बाद में तितली द्वारा उसे भारतीय जीवन तथा प्रेम में दीक्षित कराते हैं । तितली-मधुबन, शैल -इन्द्रदेव - इन दो प्रेमी युगलों को आमने-सामने रख कर उनका उद्देश्य भारतीय जीवन-पद्धति की श्रेष्ठता प्रमाणित करना है ।

प्रेम में शारीरिकता को प्रसाद प्रेमचन्द की तरह वर्जित नहीं मानते । लेकिन सम्प्रदाय-गत तर्कों की मदद से लेकर वे प्रेम को एक ओर मानव कल्याण के नाम पर अमूर्त बना देते हैं और दूसरी ओर प्रेम का सहारा लेकर वे एक स्थापित व्यवस्था और संस्कृति से समझौता कराते हैं । उन्हें साम्प्रदायिक

समन्वय भारतीय धर्म तथा पुरुष की श्रेष्ठता के साथ ही स्वीकार है । नारी का गौरव गान अमूर्त स्तर पर ही है, जबकि व्यावहारिक स्तर पर पुरुष के प्रति स्त्री का पूर्ण समर्पण तथा त्याग ही उनका चरण लक्ष्य बना रहता है ।

तितली तथा शैला के प्रेम का मुख्य अंतर भी यही है । शैला के व्यक्तित्व में समर्पण से अधिक स्वतंत्रता का महत्व है । तितली जीवन के अन्य क्षेत्रों में तो अपनी स्वतंत्रता पूर्णत: सुरक्षित रखती है, लेकिन प्रेम के क्षेत्र में समर्पण ही उसका चुनाव है । शैला के लिए प्रेम की स्वतंत्रता भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी कि आर्थिक स्वतंत्रता, बल्कि दोनों एक दूसरे से परस्पर जुड़े हुए हैं । इसीलिए वह प्रेम में अपेक्षाकृत अधिक जटिलता का अनुभव करती है ।

शैला आधुनिक स्त्री के प्रेम की उन स्थितियों को सामने लाती है जो लोकतांत्रिक विकास द्वारा पुरुष के समानान्तर होने की मानसिकता लेकर आती है, लेकिन समानान्तर होने की यह प्रक्रिया कुछ जटिलताओं और कभी-कभी कुछ कुंठाओं को भी सामने लाती है । खास तौर पर जबकि स्वतंत्रता के साथ-साथ सुरक्षा की भावना भी साथ-साथ चलती रहती है । "आधुनिक स्त्री जिस अनुपात में स्वतंत्र होना चाहती है, उसी अनुपात में सुरक्षा भी चाहती है । इसमें विडम्बना यह है कि जिस पुरुष समाज से वह स्वतंत्रता चाहती है, सुरक्षा भी उसी से चाहती है ।"

अत: इस प्रेम में स्त्री के लिए सुरक्षा के साथ स्वतंत्रता का भी प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है - जो प्रेम की नई जटिलताएं सामने लाता है । प्राचीन स्त्री के सामने प्रेम में समर्पण ही प्रधान था जो तितली के व्यक्तित्व में दिखाई पड़ता है और प्रसाद जी ने अंतत: शैला को भी उसी पथ की अनुगामिनी बना दिया है ।

लेकिन यह स्पष्ट है कि आधुनिक स्त्री के सन्दर्भ में उठे प्रेम के इन प्रश्नों का यह कोई संगत समाधान नहीं है । सामाजिक संरचना की जटिलता के साथ इस समस्या की जटिलता भी बढ़ती गई है ।

पुनर्जागरण के बाद हिन्दी कथा-साहित्य की प्रेम धारणा को विश्व-साहित्य में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के प्रवेश ने सर्वाधिक प्रभावित किया। सामान्यत: साहित्य में इस शताब्दी के तीसरे दशक तक फ्रायड की विचार-धारा पूरी तरह स्थापित हो चुकी थी । हेनरी जेम्स, जेम्स ज्वायस, वर्जिनिया वुलफ आदि के उपन्यास लिखे जा चुके थे । भारत में यद्यपि अप्रत्यक्ष रूप से उपन्यासों की इस नई लहर का प्रभाव काफी पहले से पड़ना शुरू हो गया था, लेकिन सीधा प्रभाव चौथे दशक के बाद ही दिखाई पड़ा । भारत के सन्दर्भ में यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि पुनर्जागरण की जो प्रक्रिया बीसवीं शताब्दी के साथ ज़ोर पकड़ती गई थी, वह अभी समाप्त नहीं हुई थी, बल्कि गांधी-वादी विचारधारा के रूप में उसका उत्कर्ष दिखाई पड़ रहा था और इसी समय साहित्य में आनेवाली मनोवैज्ञानिकता भी उसी का एक अंश बनकर विकसित हुई । अत: कहीं-कहीं गांधीवादी मान्यताओं तथा मनोवैज्ञानिक मान्यताओं के मिश्रण से एक नई प्रेमधारणा निर्मित करने की कोशिश भी की गई ।

मनोविज्ञान के प्रभाव से साहित्य में अचेतन की महत्ता बढ़ी तथा तर्क की प्रतिष्ठा घटी - जो अब तक पुनर्जागरण के उपन्यासों का मुख्य आधार बना हुआ था । लेकिन मनोविज्ञान का वास्तविक प्रभाव नैतिक चेतना पर पड़ा और इस परिवर्तित नैतिक चेतना ने ही प्रेम-धारणाओं में परिवर्तन किया । इस परिवर्तित नैतिक चेतना के साथ गांधीवाद तथा मनोविज्ञान मिश्रित जो प्रेम-धारणा विकसित हुई - उसका सर्वश्रेष्ठ रूप जैनेन्द्र के कथा-साहित्य में लक्षित होता है ।

`त्याग-पत्र` के माध्यम से जैनेन्द्र ने प्रेम की एक नई नैतिकता गढ़ने का प्रयास किया है । प्रेम के साथ नैतिकता का प्रश्न इसलिए भी घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है क्योंकि स्त्री के साथ कौमार्य तथा सतीत्व की धारणा जुड़ी रही है । `त्यागपत्र` में जैनेन्द्र ने जो प्रेम की नई नैतिकता गढ़ने की कोशिश की है, उसमें कुछ तो अपने संस्कारों के कारण और कुछ जानबूझकर उन्होंने नारी के आत्म-पीड़क रूप को ही प्रमुख बनाया । इस क्रम में उन्होंने कौमार्य तथा सतीत्व की मूल धारणा को एक सीमा तक खंडित तो किया, लेकिन अपनी विशेष व्याख्या के द्वारा उसे और अधिक शुद्धतावादी गौरव दे दिया ।

`त्याग-पत्र` में मृणाल की यातना का कारण उसकी एक विशेष सामाजिक परम्परा में नारी के पत्नी-रूप में आचरण के विरुद्ध घोर ईमानदारी है । विवाह मात्र से पति को अपना सर्वस्व मानने के बदले वह उसे अपने पूर्व प्रेम का परिचय दे देती है और परिणाम-स्वरूप भीषण शारीरिक और मानसिक यातनाएं भोगती हैं । हिंसक पति तथा मृणाल के बीच उसके पूर्व प्रेम की अभिशप्त छाया इस हद तक बढ़ती है कि उसे कोयले वाले के यहां शरण लेनी पड़ती है - जिससे मृणाल के यौन-सम्बन्ध को जैनेन्द्र छिपाया नहीं है । कोयले वाले और मृणाल के बीच जो सामाजिक पार्थक्य की अभेद्य दीवार है वह दिनोंदिन दृढ़ होती जाती है और उसके बाद मृणाल का शेष जीवन उत्तरोत्तर आत्मयंत्रणा भोगते हुए खुद को शत्रु की सीमा तक नष्ट करने की कथा है ।

जैनेन्द्र यदि रोमानी प्रेम के बाद भाववादी प्रेम की ओर लौट न गए होते तो मृणाल के रूप में एक विशेष सामाजिक संरचना में दुहरे नियमों के बीच पिसती हुई नारी की विडम्बना का अत्यन्त सफल मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत कर सके होते । लेकिन ऐसा संभव नहीं हुआ और उन्होंने मृणाल के न्यूरोसिस को ही गौरवान्वित करते हुए प्रेम की तथाकथित

नैतिकता के रूप में आत्मपीड़ा का एक आरोपित दर्शन निर्मित कर लिया है ।

प्रेम के इस भावुकतावादी रूप की शुरुआत उपन्यास के प्रारंभ में ही होती है । उपन्यास का कथा-दृश्य एक बच्चे के भावुकतापूर्ण दृष्टि-कोण से ही दिखाया गया है और शुरू में ऐसा आभास होता है कि जैनेन्द्र प्रेम तथा नारी को समाज के रूढ़ नियमों तथा दुहरे सिद्धान्तों के विरुद्ध विद्रोह करते हुए दिखलाना चाहते हैं, लेकिन क्रमशः यह प्रयास आत्मपीड़ा की दुखांतक गौरवगाथा में परिवर्तित हो जाता है ।

'त्याग-पत्र' में जैनेन्द्र ने एक महत्वपूर्ण पहल की थी । और पहली बार प्रेम तथा स्त्री को सामाजिक रूढ़ियों के सार्थक विरोध में खड़ा किया था, लेकिन यह विरोध बाहर से स्थानांतरित होकर आत्मोन्मुख हो गया और रूढ़ियों के बजाय अपने को नष्ट करने वाला प्रेम बन गया ।

मृणाल सिर्फ एक बार प्रेम में होती है - वह भी किशोर वय में । उसका शेष जीवन इस प्रेम की तृप्ति में बाधक बने समाज के प्रति आत्म-यंत्रणा के रूप में प्रतिशोध है ।

पहला प्रेम किशोरी मृणाल को सहसा युवती मृणाल में बदल देता है । प्रेम के द्वारा पहली बार उसे अपने स्त्री होने का बोध होता है । लेकिन मूलतः यह प्रेम किशोर-प्रेम ही है - जिसमें मांसलता और गहराई कम तथा दिवास्वप्नी रोमानियत अधिक है । '... मैं बुआ नहीं होना चाहती । बुआ । छिः । देख, चिड़िया कितनी ऊंची उड़ जाती है । मैं चिड़िया होना चाहती हूं.... ।'[1]

---

1. जैनेन्द्र कुमार - त्याग-पत्र

प्रेम जहां मृणाल को स्त्री होने का बोध कराता है, वहीं स्त्री के रूप में परतंत्र होने का बोध भी कराता है । आसमान में उड़ती चिड़िया से अधिक स्वतंत्रता की दिवास्वप्नी लालसा और क्या हो सकती है ।

समाज को बदला नहीं जा सकता । या तो उससे समझौता किया जा सकता है या उसे दबाया जा सकता है - और दोनों गलत हैं । फिर सही क्या है ? सही रास्ता है इस सच्चाई को समझ जाना और इसे इस उम्मीद पर भोगना कि शायद इस आत्मतप का प्रकाश एकत्र होकर मानवता के लिए किसी प्रकाश-मार्ग का निर्माण कर सके । प्रमोद का यही दर्शन है... ... "मानव चलता जाता है और बूंद-बूंद दर्द इकट्ठा होकर उसके भीतर भरता जाता है । वही सार है । वही जमा हुआ दर्द मानव की मानस-मणि है । उसके प्रकाश में मानव का गतिपथ उज्ज्वल होगा ।"[1]

इसी तरह मृणाल भी उन स्थितियों को यथावत स्वीकार कर लेती है जो कोयले वाले के यहां उसकी नियति बनकर आती है । अपनी नियति वह पहचानती है, लेकिन उसका प्रतिरोध नहीं करती । अपने पति से समझौता करके वह वहां भी रह सकती थी - पर वैसा नहीं करती । वह यह भी जानती है कि कोयले वाले के यहां ज़्यादा दिन नहीं रह सकती ।

जैनेन्द्र जी की धारणा के अनुसार पतिव्रत धर्म का अर्थ है पुरुष के प्रति समर्पण ।

जहां तक इलाचन्द्र जोशी का प्रश्न है - वह कई दृष्टियों से प्रेम की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करने वाले पहले उपन्यासकार या कथाकार हैं । लेकिन

---

1. जैनेन्द्र कुमार - त्याग-पत्र

उनके यहां रोमांटिक मनोविज्ञान कायरत है । इसी कारण उनकी प्रेम-धारणा भी मूलत: रोमांटिक प्रेम-धारणा है जिसमें मनोविज्ञान सिर्फ योजनाबद्ध व्याख्या-स्थितियां बनकर आया है ।

`सन्यासी` उपन्यास का नायक नन्दकिशोर अपने जीवन में दो स्त्रियों के सम्पर्क में आता है और दोनों को अपने दीनताजन्यअहं भाव से नष्ट करने का प्रयास करता है और अंत में स्वयं अस्तित्व की निरर्थकता का शिकार होकर रह जाता है । दो स्त्रियों में एक - जयंती - इस अहं के दंश से व्यथित होकर आत्मदाह कर लेती है और दूसरी शांति उस की अहं जन्य अधिकार लिप्सा से विद्रोह करके अपने स्वतंत्र अस्तित्व की स्थापना करती है । नायक नन्दकिशोर न तो जयंती से प्रेम करता है न शांति से । जयंती की ओर उसका आकर्षण कुछ विवश परिस्थितियों का परिणाम है । शांति के प्रति प्रदर्शित अपनी कायरता, अन्याय और क्रूरता को वह जिस रूप में झेल रहा है, जयंती सहसा उसका उपचार बन कर सामने आती है ।

जोशी जी के एक अन्य उपन्यास - `जहाज का पंछी` - का भटकता हुआ बनजारा नायक भी प्रेम की ओर वापस लौटता है । प्रेम ही उसके बोहेमियन मन को विराम और विश्राम देता है । किन्तु वह पूरी प्रक्रिया घोर रोमांटिक भावबोध की सीमा में घटित होती है और जोशी जी प्रेम की धारणा को आधुनिकता की ओर उन्मुख करने के बजाय रोमांटिक प्रेम की सीमा में ही दूर तक खींच कर ले जाते हैं ।

`बाणभट्ट की स्वच्छंदतावादी प्रेम के प्योरिटन पक्ष को यह उपन्यास - `आत्मकथा` अत्यन्त प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करता है । बाणभट्ट प्राचीन कथाओं का प्रसिद्ध रोमांटिक नायक है । बाणभट्ट की

रोमांटिकता उसकी घुमक्कड़ वृत्ति में है । वह प्राचीन कथाओं का बोहेमियन नायक है । इसके अतिरिक्त वह साहित्य तथा सौन्दर्य का उपासक भी है । बाणभट्ट की इन सभी चारित्रिक विशेषताओं का - जिन्हें लेखक ने एक विशेष दृष्टिकोण से निर्मित किया है, उसकी प्रेम-धारणा पर सीधा प्रभाव पड़ता है । अपनी नितान्त विनम्रता तथा कोमल उपासना भाव में, यह प्रेम स्पष्ट रूप से मध्ययुगीन दरबारी संस्कृति की उपज जान पड़ता है जिसे लेखक ने विलक्षण कला-विवेक के साथ शुद्धता और अलौकिकता के शिखर तक पहुंचा दिया है ।

स्त्रियों के सम्बन्ध में बाणभट्ट की सामान्य धारणा है कि 'बहुत छुटपन से ही मैं स्त्री का सम्मान करना जानता हूं । साधारणत: जिन स्त्रियों को कुलभ्रष्टा माना जाता है, उनमें एक देवी शक्ति भी होती है, यह बात लोग भूल जाते हैं, मैं नहीं भूलता । मैं स्त्री-शरीर को देव मंदिर के समान पवित्र मानता हूं । उस पर की गई अनुकूल टीकाओं को मैं सह्य नहीं कर सकता ।'[1]

बाणभट्ट के लिए सारी स्त्रियां देवियां हैं भट्टिनी, सुचरिता, निपुणिका, सभी । इसके साथ यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि बाणभट्ट की सारी स्त्रियां यों तो दलित हैं या पतिताएं : बाणभट्ट ने उन्हें ही देवी का आसन दिया है । यह एक सामंतवादी विडम्बना है । उनकी शारीरिक आवश्यकताएं या तो पापाचार हैं या पुरुष कृपा की प्रतीक्षा । बाणभट्ट की मध्ययुगीन स्त्री की वास्तविकता यही है । निपुणिका, सुचरिता, मोहिनी सभी प्रेम की मांग करती हैं पर उन्हें मिलता है उपदेश, उपासना या कारागार । सुचरिता का पति बौद्ध बनकर प्रेम की मांग को ठुकराता है और बाणभट्ट अनुचर या उपासक बनकर । यह मानवीय सम्बन्धों और

---

1. हजारीप्रसाद द्विवेदी - बाणभट्ट की आत्मकथा

सम्बन्ध की गरिमा का उपहास है । द्विवेदी जी इसे जानते हैं, इसीलिए उन्होंने बाणभट्ट के चरित्र के इसी पक्ष को केन्द्र में रखा है ।

उपन्यास के पूर्वार्ध में बाणभट्ट की निर्भीकता, आडम्बर मुक्ति तथा प्रवृत्तियों के स्वस्थ स्वीकार का उपदेश मिलता रहता है - भट्टिनी को डूबने से बचाने के लिए वह महावराह की मूर्ति पानी में फेंक देता है । इससे यह आभास मिलता है कि बाणभट्ट मध्ययुगीन अंधविश्वास तथा रोमांटिक कुहरे - दोनों से निकलने की कोशिश कर रहा है - और इस आरोपण के रूप में ही बाणभट्ट को गढ़ने की कोशिश एक सार्थक खोज प्रतीत होने लगती है - विशेष रूप से तब जब उसके भीतर यह प्रखर भाव-बोध और मर्म-बोध स्थापित करने की चेष्टा की जाती है - 'किसी से न डरना, गुरु से भी नहीं, मंत्र से भी नहीं, वेद से भी नहीं ।'[1] ऐसा प्रतीत होता है कि बाणभट्ट परम्परा के भीतर से ही प्रचलित नैतिकता और रूढ़ियों के विरुद्ध कुछ तलाश रहा है - एक विशेष जीवन-दृष्टि । लेकिन यह भ्रम साबित होता है । एक रचनाकार के रूप में वह प्रचलित मान्यताओं के विरुद्ध अपना सत्य रचना चाहता है - लेकिन इस कोशिश में राजनीति, रूढ़ियाँ और आंतरिक विसंगतियों का झूठ ही उपलब्ध करता है । बाण-भट्ट के इस चरित्र से उसका प्रेम जुड़ा हुआ है । वह न केवल निपुणिका के प्रेम को अस्वीकार कर देता है, बल्कि भट्टिनी का उपयोग भी वह सेवक या अभिभावक बनकर ही करना चाहता है । एक संस्कारबद्ध स्त्री के रूप में भट्टिनी अपने को जितना व्यक्त कर सकती है, करती है । लेकिन बाणभट्ट का निर्मम और एक सीमा तक पाखण्ड को छू लेने वाला शील यहाँ भी अडिग रहता है । भट्टिनी के आत्म-स्वीकार में अपने नारीत्व तथा उससे जुड़ी हुई आवश्यकताओं की अभिव्यक्ति है - अपने ऊपर आरोपित कुलीनता

---

1. हजारीप्रसाद द्विवेदी - बाणभट्ट की आत्मकथा

के गौरव को वह उतार फेंकती है । लेकिन बाणभट्ट प्रेम की व्याख्या के लिए ऐसे तर्कों का आविष्कार करता है जो उसे प्रेम के खतरों से सुरक्षित रखते हुए प्रेम को उसकी सुविधा तथा उपयुक्त बना सके ।

'झूठा-सच' में यशपाल ने वर्तमान सामाजिक संरचना की विसंगतियों का उद्घाटन करते हुए नए सामाजिक सम्बन्धों की सम्भावनाओं की ओर इंगित भी किया है । प्रेम-सम्बन्धों के सन्दर्भ में पहली बार इस उपन्यास में यथार्थवादी दृष्टि की झलक मिलती है । झूठा-सच के पहले खण्ड में निम्न मध्यवर्ग को केन्द्र बना कर विवाह-पूर्व के प्रेम की स्थितियों पर विचार किया गया है । लड़कियों की शिक्षा तथा चेतना ने उन्हें घर से बाहर ज़रूर निकाला, लेकिन बाहर की दुनिया ने उन्हें नई विडम्बनाओं तथा विभ्रमों से भर दिया । कनक, तारा, उर्मिला, शीलो, झूठा-सच के ये प्रमुख नारी-पात्र उपन्यास के पूर्वार्ध में इसी समस्या को सामने लाते हैं । कनक जयदेव पुरी से, तारा असद से तथा शीलो रतन से विवाहपूर्व प्रेम करती हैं । इनमें कनक तथा तारा का प्रेम अपेक्षाकृत गंभीर तथा बौद्धिक है, शीलो का शुद्ध शारीरिक तथा किशोर भावुकता से युक्त प्रेम है । यशपाल ने इन सम्बन्धों को अनैतिक या अस्वाभाविक नहीं माना है । अस्वाभाविकता और अनैतिकता इन सम्बन्धों पर लगी हुई पाबंदियों के कारण उत्पन्न होती है । ये पाबंदियां सम्बन्धित व्यक्तियों में अपराध बोध उत्पन्न करती हैं और उनके व्यक्तित्व विकास को अवरुद्ध कर देती हैं ।

शीलो अपने प्रेमी के पुत्र की मां भी बनती है और इसी दरम्यान उसका विवाह जब पारंपरिक ढंग से दूसरे व्यक्ति से हो जाता है तो अपने प्रेमी द्वारा प्राप्त पुत्र को अपने पति द्वारा प्राप्त पुत्र घोषित कर देती है । परम्परागत नैतिकता की इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है । वह प्रायः ढोंग को ही प्रश्रय देती है और नैतिक शुद्धता का दम भरती है । तारा का विवाह भी उसकी इच्छा के विरुद्ध होता है । शीलो तथा

तारा दोनों के आयोजित विवाह असफल होते हैं । दूसरी तरफ कनक का भी विवाह असफल होता है - जो वह अपने प्रेमी जयदेव पुरी से एक लम्बी प्रेम-प्रक्रिया के बाद अपने परिवार के विरोध में जाकर करती है ।

यशपाल ने सम्बन्ध के दोनों पक्षों को समानान्तर रखा है । विवाहपूर्व का प्रेम असफल होता है, आयोजित विवाह असफल होता है और प्रदीर्घ प्रेम के बाद किया गया प्रेम भी असफल होता है । फिर प्रेम का स्वरूप क्या हो और किन तत्वों पर आधारित हो कि वह विडम्बना से मुक्त रह सके ?

झूठा-सच दोनों पक्षों की विडम्बनाग्रस्त परिणतियों को दिखलाता है - लेकिन कोई निर्णय नहीं देता । निर्णय प्राय: सम्बन्धों से बाहर रहकर जज की तरह दिया जाता है जिसमें यशपाल का विश्वास नहीं है । संभवत: यशपाल का निर्णय ऐसे सम्बन्धों में किसी प्रकार के बाहरी हस्तक्षेप के विरुद्ध है ।

THESIS
0,152,3,N2,V:9 (S;55)
152 N9
Jawaharlal Nehru University Library

बर्टेंड रसेल के शब्दों में, 'चाहे जो भी रास्ता अपनाएं, हम पाएंगे कि दिक्कतें और बाधाएं वहां भी हैं । यदि हम नई नैतिकता को अपने ढंग से आगे बढ़ने दें, वह बहुत ज्यादा आगे बढ़ जाने के लिए बाध्य है, और इस रूप में ऐसी नई दिक्कतें उत्पन्न करेगी जिन्हें शायद ही कोई पसंद करे । दूसरी तरफ अगर हम आधुनिक दुनिया में पुराने युग के नियंत्रणों को लागू करने की कोशिश करेंगे तो हम नियमों को ऐसी असम्भव कट्टरता में पहुंचा देंगे जिसके विरुद्ध मानवीय स्वभाव तुरन्त विद्रोह कर बैठेगा । इससे स्पष्ट हो जाता है कि चाहे जो खतरे और परेशानियां हों, हमें दुनिया को पीछे हटने की बजाय आगे ही बढ़ने देना होगा और इस उद्देश्य के लिए एक सही अर्थों में नई नैतिकता की हमें आवश्यकता पड़ेगी ।'

प्रेम के संदर्भ में इस नई नैतिकता का स्वरूप झूठा-सच के उत्तरार्ध में उद्घाटित किया गया है । साम्प्रदायिक दंगों को आधार बनाकर यशपाल ने पुरानी नैतिकता की विसंगतियों को अपने वीभत्सतम रूप में उपस्थित किया है । तारा, बंती तथा हजारों स्त्रियां बलात्कार की यंत्रणाओं से गुजरती हुई दिखाई गई हैं । प्रश्न उठता है कि साम्प्रदायिक संघर्षों तथा धार्मिक उन्मादों का यह यौन विस्फोट क्यों ?

सामूहिक स्तर पर इस बलात्कार का सम्बन्ध कहीं न कहीं रूढ़िवादी नैतिकता से है जो समाज के अचेतन में एक अतृप्त यौन-भावना को अवदमित करती जाती है । वस्तुत: यह यशपाल के प्रेम सम्बन्धी वयस्क दृष्टि-कोण का परिणाम है ।

शेखर : एक जीवनी के साथ पहली बार हिन्दी उपन्यास में प्रेम का विश्लेषण प्रारम्भ हुआ । प्रेमचन्द के यहां प्रेम महत्तर उद्देश्यों से जोड़ने वाला सेतु-सम्बन्ध था । जैनेन्द्र ने प्रेम को केन्द्रीयता दी - लेकिन उनके यहां प्रेम की शारीरिकता या तो प्रतिक्रियात्मक रही या आत्मपीड़ा में सनी हुई ।

शेखर में प्रेम की संवेदना को हम दो छोरों पर स्थित पाते हैं । रोमांसवाद और भावुकतावाद से लड़ते हुए भी और दोनों की चरम परिणति के रूप में भी इन विरोधी प्रवृत्तियों के एकत्र होने का कारण है - उपन्यास में विभाजित व्यक्तित्व की शुरुआत । शेखर हिन्दी उपन्यास में विभाजित व्यक्तित्व वाला पहला नायक है । विभाजित व्यक्तित्व के माध्यम से प्रेम का यह विश्लेषण ही व्यक्ति में दो प्रेम संवेदनाओं का तीव्र संघर्ष व्यक्त करता है । शेखर की प्रेम-धारणा का अध्ययन इन दोनों संवेदनाओं के संघर्ष का अध्ययन है ।

इस आत्मविभाजन का मनोवैज्ञानिक अथवा समाजशास्त्रीय अध्ययन यहां अप्रासंगिक है, लेकिन यह स्पष्ट है कि इसके मूल में शेखर की अतिरिक्त संवेदनशीलता कार्यरत है । उसका प्रेम एक आश्रय की खोज है । उसका उग्र गैर-समझौतावादी स्वभाव जो हर जगह हारता है, थकता है, ऊबता है, प्रेम इन सब से मुक्त होना चाहता है । इसीलिए प्रेम उसके लिए केवल ग्रहण करने की प्रक्रिया है, देने की नहीं - वह प्यार को मांगता ही रहा है, प्यार देना उसने जाना ही नहीं ।"[1]

एक संवेदनशील व्यक्ति के रूप में उसे प्रेम की ज़रूरत है । वह जानता है कि केवल घृणा के सहारे नहीं जी सकता । केवल घृणा दूसरों को भी उसी अनुपात में अपने प्रति घृणा के लिए उकसाती है - और दूसरों की लगातार तीव्र बनती हुई घृणा जीवन को असम्भव बनाती है । लेकिन अविश्वास की प्रतिक्रिया में जीवन जिया नहीं जा सकता । जीवन नष्ट किया जा सकता है । शेखर का जितना जीवन सामने है उसमें दूसरों के प्रति उतना हिंसक आक्रोश नहीं, जितना इस प्रतिक्रिया में अपना जीवन नष्ट करने की प्रवृत्ति ।

अत: शेखर का जीवन सड़ने वाली चीज़ घृणा नहीं, प्रेम का अभाव है । शेखर के पहले भाग में किशोर शेखर के प्रेम का विश्लेषण किया गया है । किशोरी शेखर अन्तर्मुखी है और उसकी सबसे बड़ी समस्या अकेलापन है। प्रेम अकेलेपन से मुक्ति की, एक कोशिश है । हर आदर्श कहीं-न-कहीं नितान्त अकेला है जिसमें अकेलेपन की वेदना जितनी तीव्र है, प्रेम की उसे उतनी ही ज़रूरत है ।

लेकिन प्रेम और सौन्दर्य के साथ ही शेखर को एक दूसरी चीज़ की भी खोज है - दर्द और विश्वास की । और उसके प्रेम में सौन्दर्य-दर्द तथा विश्वास तीनों एकाकार हो गए हैं । अपने जेल-जीवन में उसे बाबा मदन सिंह

---

1. शेखर - एक जीवनी ; अज्ञेय

से दर्द और विश्वास मिलता है जिसे वह अपने और शशि के प्रेम में पिरो देता है - `अभिमान से भी बड़ा दर्द होता है, पर दर्द से भी बड़ा विश्वास है ।`[1]

शशि - शेखर का प्रेम इस दर्द और विश्वास के सहारे ही विकसित और बड़ा होता है । किन्तु इस दर्द और विश्वास का आधार क्या है ?

शेखर का प्रेम उसके जीवन-संघर्ष से जुड़ा हुआ है । इस संघर्ष का रूप भी दुहरा है । एक स्तर पर यह सामाजिक संघर्ष है और दूसरे स्तर पर एक तत्व दर्शन की तलाश । सच्चाई को जानने की तलाश, सम्बन्धों के जड़ तक पहुंचने की तलाश है । दर्द इस संघर्ष में पराजित होने तथा इस तलाश में विफल होने का दर्द है । विश्वास इस संघर्ष तथा तलाश में पुन: आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है । शशि का प्रेम और जेल की जिंदगी शेखर को बतलाते हैं कि अपने अलावा दूसरों का भी दर्द है जो दूसरों से जोड़ता है, संवेदना के रूप में । अत: शेखर के लिए प्रेम में जोड़ने वाली अनुभूति पीड़ा है, सुख नहीं । सुख उसके लिए एक दूसरी तलाश है जिसे वह इस पीड़ा या दर्द के भीतर से ही उपलब्ध करता है । सुख शेखर के लिए स्वतंत्र अनुभूति नहीं है ।

`मैला आंचल` को रेणु ने लोक गीतों की धुनों में बांध दिया है । उसकी प्रेम धारणा भी लोकगीतों की संवेदना से ही विकसित हुई है । चाहे लक्ष्मी कोठारिन हो चाहे कमली । दोनों के प्रेम का श्रोत लोकगीत और लोककलाएं ही हैं । मेरीगंज को केन्द्र बनाकर लिखे गए इस उपन्यास के ग्रामीण-प्रेम का सबसे प्रमुख चरित्र-लक्षण अतृप्ति है । लक्ष्मी कोठारिन

---

1. अज्ञेय - शेखर : एक जीवनी

धार्मिक रूढ़ियों से ग्रस्त वासनाओं का शिकार है । उसके लिए प्रेम एक प्रलोभन है चाहे डाक्टर का सुन्दर शरीर हो, बालदेव जी हों या कालीचरन । वह धार्मिक रूढ़ियों द्वारा अवदमित तथा विकृत ही की गई यौन आकांक्षाओं का पुंज है । कमली का प्रेम सुविधाजनक परिस्थितियों में असमय विकसित दिवास्वप्नी प्रेम है, जिसका मुख्य चरित्र भी अतृप्ति ही है । इस परिस्थिति में प्रेम की प्यास के लिए असमय विकास उत्तेजना है, लेकिन अभिव्यक्ति की सुविधा नहीं है । फलत: वह हिस्टीरिया का शिकार है । गांव के परिवेश में प्रेम के संकट के ये दोनों प्रेम पात्र बड़ी सूक्ष्मता से व्यक्त करते हैं । गांव का परिवेश बदल गया है, लेकिन रूढ़ियां नहीं टूटीं ।

यौन कुंठाओं का केन्द्र मेरीगंज रोमांटिक स्मृतियों में बसा हुआ गांव है । निलहे साहब की सुनहरी बालों वाली सुन्दरी पत्नी मेरी की स्मृतियों का गांव । अत: यह संयोग ही कहा जाएगा कि मैला आंचल के सभी प्रेम सम्बन्ध अतृप्ति के बीच ही विकसित होते हैं । उपन्यास का केन्द्रीय पात्र मानवतावादी है जो विदेशी छात्रवृत्ति छोड़कर मेरीगंज आया है । रोमांस तथा यौन भावना का यह मिश्रण प्रेम की बदली हुई नैतिकता को ज़रूर सामने लाता है, जो प्रेम में बाहरी तथा भीतरी दोनों चुनौतियों को ज्यादा खुले रूप में स्वीकार करती है ।[1]

'मैला आंचल' के लगभग पन्द्रह वर्ष बाद राही मासूम रजा के उपन्यास 'आधा गांव' की शुरुआत पुरानी पीढ़ी के मानवीय सम्बन्धों को प्रश्न बना कर उपस्थित करने से होती है - खास तौर पर पुराने प्रेम सम्बन्धों को । पुरानी नैतिकता और सम्बन्धों की रूढ़ियों को सामने प्रश्न करते हुए इस उपन्यास की शुरुआत से ही कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं । 'आधा गांव' एक विशेष परिवेश में प्रेमी की विडम्बना को बयान करता है - जहां

---

1. विजयमोहन सिंह - हिन्दी उपन्यास और प्रेम सम्बन्ध

जर्जर रूढ़ियों में जकड़ा हुआ प्रत्येक पात्र `मैला आंचल` की तरह यौन अतृप्ति तथा उसके व्यभिचार से ग्रस्त है । इस तनावपूर्ण संकीर्णता ने `आधा गांव` के प्रेम को भी एक विशेष चरित्र प्रदान किया है ।

इसके बाद हिन्दी कथा साहित्य में एक बिलकुल दूसरा दौर शुरू होता है । इसकी पीठिका बहुत कुछ दो विश्व-युद्धों की विभीषिका से उत्पन्न हुए जीवन की निरर्थकता को परिभाषित करनेवाला अस्तित्ववादी दर्शन है । साहित्य में आधुनिक भावबोध की पहली चेतना `ईश्वरहीनता की अवधारणा के साथ होती है । एक ईश्वरविहीन विश्व में रहने के एहसास ने मनुष्य के पूरे `होने` के क्रम को परिवर्तित कर दिया । इस ईश्वरहीनता ने उसे अपना स्वामी और दास दोनों बनाया । उसे स्वतंत्र तो किया, लेकिन निष्कवच बनाकर छोड़ दिया । अर्थहीनता से उत्पन्न इस अनुभूति ने साहित्य में ऐसे पात्रों की संख्या बढ़ाई जो अनिर्णय, अनिश्चय तथा निष्क्रियता के शिकार थे । यह निश्चय तथा निष्क्रियता वैज्ञानिक सभ्यता के मोह-भंग से उत्पन्न हुई थी । अब मनुष्य न तो विश्व को बदल सकते हैं, न उसे जीत सकते हैं । यह एक अंतहीन शृंखला है जिसमें हम केवल भटक सकते हैं । दास्तोएवस्की का ब्रदर्स कमरालेव तथा काफ्का के ट्रायल तथा कैस्ल उपन्यासों के पात्र ऐसे ही हैं ।

मोहन राकेश के `अंधेरे बन्द कमरे ` के हरिवंश तथा नीलिमा की समस्या को आधुनिक मनुष्य की मानसिकता के इसी सन्दर्भ में समझा जा सकता है । हरिवंश अपने मित्र मधुसूदन से कहता है --

`समझ में नहीं आता कि मैं क्या चाहता हूं । बहुत कुछ ऐसा है जो मैं शिद्दत के साथ महसूस करता हूं । मगर हिन्दी में लिखना चाहता हूं तो लगता है, अंग्रेजी में लिखना चाहिए । अंग्रेजी में लिखने लगता हूं, तो

महसूस होता है कि उस जुबान के मुहावरे का मुझे पता ही नहीं है । एक अजब बेबसी ही महसूस होती है । मेरा मन जैसे शिकंजे में फंसा है जो मेरी किसी भी कोशिश से नहीं टूट पाता । यह भी समझ में नहीं आता कि मैं लिखना ही चाहता हूं या कुछ और चाहता हूं ।'[1]

हरिवंश और मधुसूदन दोनों अपने भीतर एक अभाव का अनुभव करते हैं । सम्भवत: इस अभाव को प्रेम भर सकता - लेकिन दोनों प्रेम करने में भी असमर्थ हैं । यह आकस्मिक नहीं है कि उपन्यास के सभी पात्र महानगर की उत्पत्ति हैं । महानगर उस अमानवीयकरण की प्रक्रिया के नासूर हैं जहां अलगाव और अजनबीपन की समस्या सर्वाधिक तीव्र है । उपन्यास के पात्र तो अतीत में जीते हैं या भविष्य में । वर्तमान में नहीं । अत: प्रेम भी उनके लिए या तो भविष्य का स्वप्न है या अतीत स्मृति। हरिवंश जब अपनी पत्नी को छोड़ कर विदेश चला जाता है, तभी उसे प्यार करता है - क्योंकि तब वह अपने प्रेम की स्मृति में जीता है । वह उस प्रेम को वर्तमान में लाना चाहता है - लम्बे लम्बे पत्र लिखकर वह नीलिमा को विदेश बुलाता है और जब वह उसके पास चली जाती है तो उससे अलग हो जाता है । दोनों एक दूसरे से अलग हो जाते हैं और परस्पर आरोप लगाते हैं । प्रेम की विडम्बना का यह अविच्छिन्न सिलसिला चलता रहता है । प्रेम और घृणा की लड़ाई में यह पहचान आधुनिक प्रेम धारणा का एक आवश्यक हिस्सा है ।

शायद प्रेम के इस घुटन और सीलन भरे अन्धेरे बन्द कमरों से

---

1. मोहन राकेश - अन्धेरे बन्द कमरे

निकलने का कोई उपाय नहीं है । कम से कम वर्तमान परिवेश और व्यवस्था में । मनुष्य या तो अपनी चेतना को फेंक दे या अपने आप को नष्ट कर दे - विक्षिप्तता या आत्मघात की सरहदों तक । आधुनिक प्रेम की शायद यही नियति है ।

--

दूसरा अध्याय

निर्मल वर्मा का आधुनिकताबोध और प्रेम

निर्मल वर्मा का आधुनिकताबोध और प्रेम

आधुनिकता कोई मूल्य न होकर, मूल्य के प्रति एक दृष्टि है । ये मूल्य समकालीन भी हो सकते हैं, पारंपरिक भी और अतीत के भी । कभी-कभी अतीत का कोई मूल्य हमारे लिए आज के किसी मूल्य से भी अधिक आवश्यक और मूल्यवान हो सकता है और तब आधुनिकता एक विवेक हो सकती है जो उसका सही मूल्यांकन कर सके ।[1]

निर्मल जी की कला-चिन्ता विज्ञान, इतिहास, समाज, विचार-धारा, संस्कृति आदि कई क्षेत्रों में उलझती है और मानवीय सार्थकता के लिए निरन्तर संघर्षशील कला-विवेक की प्रस्तावना करती है । उनके अनुसार विज्ञान प्रकृति की चिरन्तनता का उल्लंघन करने के कारण और `आइडियोलाजी` भविष्य के लिए वर्तमान के साथ बलात्कार करने के कारण मनुष्य और कला का अमानवीयकरण करते हैं । उन्होंने बल दे कर कहा है `कला की कोई सामाजिक प्रासंगिकता नहीं है ` क्योंकि उसका औचित्य और उसकी शर्तें किन्ही सामाजिक और दूसरे सिद्धान्तों पर निर्भर नहीं । कला इतिहास की उपज होते हुए भी उसके समयबद्ध और प्रगति-बद्ध फैसलों की अवहेलना कर सकती है ।

इन सभी बातों के लिए उन्होंने कहा है कि ये स्थितियां हैं, समस्याएं नहीं । ये सिर्फ सन्दर्भ हैं, कहानी के विषय नहीं । यह `टोटल टैरर` की स्थिति है । फिर कहानी का विषय क्या है ? समस्या क्या है ? उनके अनुसार विषय है आत्मबोध, जो समाज से विच्छिन्न

---

1. कुंवर नारायण - आज और आज से पहले

होकर मनुष्य ने हासिल किया है । समस्या है स्वतंत्रता की आशा और अकेलेपन का अपशगुन ।

निर्मल जी के चिन्तन और कथा-साहित्य दोनों में एक बात स्पष्ट है कि किसी भी तरह की बौद्धिक व्याख्या जो जीवन की संगति की स्थापना करती है, अन्ततः व्यर्थ है । मानवीय विधा का कोई भी दूसरा अनुशासन मनुष्य की अस्मिता, प्रातिभ आन्तरिकता को नहीं बचा सकता । सिर्फ कला-विवेक ही वहां तक पहुंच सकता है । कला-बुद्धि स्वतंत्र और मौलिक बुद्धि है । यह कला-बुद्धि उस बिन्दु पर उभरती है जहां देशकाल का अतिक्रमण करने वाली प्रातिभ आन्तरिकता और उसे असम्भव बनाने वाली देशकालबद्ध स्थितियां परस्पर चरम तनाव में होती हैं । कलाकार की चेतना में एक तनावग्रस्त प्रदेश उभर आता है - वह जिस का भोक्ता और साक्षी दोनों हैं । यहां कलाकार के लिए यह सचेतनता आवश्यक है कि इस तनावग्रस्त क्षेत्र की सजीव और व्याकुल वास्तविकता को व्यवस्था और संगति प्रदान करने के प्रयत्न में झूठा न बनाए । कोई समझौता न करे । आदमी की जिन दैनिक स्थितियों और क्रिया-व्यापार में जीता है, वह एकमात्र निश्चित वास्तविकता है, लेकिन वह उसकी आन्तरिक प्रतिभा या अस्मिता के लिए नितान्त अपर्याप्त और असन्तोषप्रद है । इस तरह एक अर्थ में वह दैनिक, तात्कालिक और तुच्छ से लगने वाले क्रिया-व्यापारों को स्वीकार और अस्वीकार एक साथ ही कर सकता है । दूसरे शब्दों में, उत्कट सम्पृक्ति और गहरी विरक्ति के तनावपूर्ण संतुलन से कला-बुद्धि उपजती है । इस कला-बुद्धि का विषय आत्मा का वह बचा हुआ हलका है जो 'टोटल टेरर' से घिरा हुआ है । कला की सार्थकता इस बात में है कि उस कड़ी घेराबन्दी भीतर से आत्मा या अस्मिता के लिए स्वतंत्र जीवन का विकल्प और बिम्ब निर्मित करे जो जाना हुआ नहीं है लेकिन उसे जानने के प्रयत्न से अधिक सार्थक और मूल्यवान और कुछ नहीं हो सकता । आधुनिक युग में यह कुछ-कुछ तत्व-दार्शनिक सी समस्या है जो पैदा

तो हुई है ऐतिहासिक प्रक्रिया में, लेकिन उसका समाधान इतिहास बुद्धि से नहीं हो सकता । इतिहास-बुद्धि का अतिक्रमण करने की योग्यता सिर्फ कला-विवेक में है । सामान्यतया लोग इतिहास और इतिहास-प्रक्रिया को दूसरी तरह से समझते हैं । वह यह कि ऐतिहासिक प्रक्रिया में कोई समस्या उभरती है तो उसके हल की संभावना भी उसमें कहीं निहित होती है । निर्मल जी इतिहास को मानते हैं तो संभवत: इस अर्थ में कि हर युग में इतिहास मनुष्य के सामने कुछ ऐसी समस्याएं पैदा कर खड़ा हो जाता है, जिसे हल करने के लिए कला-विवेक की ज़रूरत पड़ती है । इन समस्याओं से उलझने के साथ-साथ कला-विवेक को इतिहास के विरुद्ध भी होना पड़ता है ।

निर्मल वर्मा ने अपने नए कहानी संग्रह (सूखा तथा अन्य कहानियां) में शामिल एक स्मृति लेख में कहा है कि "जिसे हम जीवन कहते हैं, उसका असलीपन उसके प्रत्यक्ष यथार्थ में नहीं, उसकी प्रच्छन्न आकांक्षा में निहित रहता है ।"[1] उनकी इस पंक्ति को यदि उनके कथालोक को समझने का एक सूत्र मान लें तो कह सकते हैं कि रिश्तों का पैटर्न उनके कथा साहित्य का प्रत्यक्ष यथार्थ है और प्रेम उसकी प्रच्छन्न आकांक्षा । इसे कुछ और आगे बढ़ाएं तो कहेंगे कि प्रेम ही निर्मल वर्मा के कथा-साहित्य का असलीपन है । उन्होंने अपनी डायरी में एक जगह प्रेम को स्वप्न कहा है । शायद यह प्रेम के लिए सबसे सम्यक् सादृश्य है । यानी आकांक्षाओं का एक ऐसा संसार जो स्वप्न की तरह ही अतार्किक, झिलमिल, मायावी लेकिन लौकिक है ।

निर्मल वर्मा की कहानियां काफी गंभीरता से पढ़ी जाती हैं । संभवत: इसलिए कि किसी कहानी के रचना होने के लिए जो लेखक का

---

1. निर्मल वर्मा - सूखा तथा अन्य कहानियां

आधारभूत कमिटमेंट चाहिए, वह ढीला नहीं पड़ता । बिलकुल अप्रत्याशित अतिनाटकीय-सी स्थितियों को भी वे अपनी शिल्प और भाषा की व्यंजकता से संभाल ले जाते हैं । संभाल ले जाने का अर्थ है अनुभूति को किसी मार्मिक बिन्दु पर सजीव बना देना ।

जिन्होंने निर्मल जी को पढ़ा है, वे जानते हैं कि वे कहानी से ज्यादा संस्मरण सुनाते हैं । स्मृति उनकी कथा का बीज है । उनके लिए अतीत कभी भूतकाल नहीं है । उनके हिसाब से भूत अपने में वर्तमान को समाए रखता है, उसे यादों अथवा पीड़ा से परिपूर्ण करता है, उसे गरमाता है अथवा सर्द झोंके से ठिठुरा देता है । उनकी कहानियों का 'मैं' कोई झूठ-मूठ का पात्र नहीं, हमेशा वे उपस्थित होते हैं । और एक क्षण, एक दिन या पूरे एक सप्ताह को पुनर्जीवित करने के लिए अतीत को खोदने का काम इसलिए किया जाता है ताकि पुनर्जीवित किए और पकड़े गए हिस्से को काल के पंजों से बचाया जा सके । उनके दिवास्वप्न इसी तरह की सामग्री से निर्मित होते हैं और निर्मल इस बात को छिपाने की कोशिश नहीं करते । उन्हें विचारों में डूबना अच्छा लगता है, उन क्षणों की क्षणभंगुरता के बारे में सोचना अच्छा लगता है जो जीवन के किसी अन्धेरे कोने को रौशन कर देते हैं, उसे नया आयाम देते हैं या चीजों की सघनता अथवा मानव-सम्बन्धों की भाग्याधीनता के प्रति एक नई समझ ले आते हैं ।

यह डूबे रहना है जो उनकी कहानियों में इतनी उदासी भर देता है । अनिर्णीत स्थितियां, जिन्हें वे बिन बांधे छोड़ देते हैं और खामोशी, जो वे अपने शब्दों के बीच डाल देते हैं, उनकी कहानियों को रूप से मार्मिक बना देते हैं । दो व्यक्तियों के बीच कुछ देर का तार जुड़ता है और फिर वे अजान रास्तों पर चले जाते हैं । प्रेम का एक अंकुर फूटने को होता है और फिर धीरे से दोनों के बीच रेगिस्तान फैल जाता है ।

मित्र दूर बिखर जाते हैं और उनके बीच एक दर्दनाक दूरी खड़ी हो जाती है । निर्मल जी बेचैन कर देने वाले प्रश्नों की तरफ इशारा करते हैं पर उत्तर नहीं ढूंढते, यह जानते हुए कि उत्तर कहीं नहीं है ।

किसी भी स्थिति में प्रस्तुत से मोहित नहीं होते । वे प्रकाश का एक टुकड़ा देखते हैं और तत्काल उनकी आखें अंधेरे कोनों की ओर घूम जाती हैं । वे एक चेहरे पर एक नर्म मुस्कान देखते हैं और सोचने लगते हैं कि कहीं वहां व्यंग्य और द्वेष के तो लक्षण नहीं हैं । वे एक बन्द कमरे में बैठते हैं और अकेलेपन की भावना से भर उठते हैं । वे बाहर देखते हैं और गिरती हुई पत्तियां दर्द का कारण बन जाती हैं । वे एक चेहरे पर एक शिकन या एक जोड़ा नम आखें देखते हैं और रहस्यमय उदासी से घिर जाते हैं ।

वे प्रारम्भ में ही इस बात को ईमानदारी से स्वीकार कर लेते हैं कि जिन बिन्दुओं पर कला और जीवन का मेल होता है, वे अस्पष्ट हैं । जैसा कि वे कहते हैं, 'यदि मैं एक कहानी को अपने अनुभव से जोड़ भी दूं तब भी उसके आरम्भ और अन्त के बीच आनेवाले अर्थों, गोपनीयताओं और चक्रव्यूहों को नहीं भेद सकता ।' इसका अर्थ यह नहीं है कि कहानी का 'मैं' वे खुद नहीं हैं, बल्कि सिर्फ यह कि कई बार चीजों के भीतर एक ऐसा अंधकार मिलता है जो किसी भी प्रकार प्रकाशमय नहीं हो सकता । निर्मल जी अपने स्वयं के संकोच व अनिश्चितता के प्रति इतने सचेत हैं कि वे इन लोगों से जुड़ने के कतई इच्छुक नहीं हैं, जो सन्देह से परे जीते हैं, जिनमें दूसरों पर अपने विचार लादने की इच्छा हमेशा बनी रहती है । इसलिए कन्धे अटकाते हुए वे साहित्य को केवल जनता की सेवा का माध्यम मानने वाले लेनिन और सार्त्र को भी अस्वीकारते हैं, जो कहानी या कविता-लेखन को अपने में एक नैतिक या राजनैतिक कर्म मानते हैं । निर्मल जी उनसे भी चिढ़ते हैं जो दूसरों के लिए क्या अच्छा होगा, यह जानने का दावा करते हैं और एक नए भविष्य के निर्माण की इच्छा से इस कदर ग्रस्त हैं कि भूत

और वर्तमान दोनों के प्रति अचेत हैं । यदि वे हजार वाट की चकाचौंध में डूब कर पूरी तरह वर्तमान में जीने को नरक मानते हैं तो पूर्ण रूप से भविष्य में जीने को एक पंगु और विकृत जीवन की शुरुआत । एक लेखक को काल में जीवित रहना है तो निर्मल जी के विचार से केवल वर्तमान नहीं, अपितु भूत और भविष्य भी है । एक कवि कथाकार किसी आम व्यक्ति के लिए भी समय, पीटर शुक्स के शब्दों में 'अनुभव की परस्पर व्याप्ती है ।' 'लक्ष्यों के काल' से उसका अधिक वास्ता नहीं है ।

निर्मल जी जीवन और लेखन से सम्बन्धित कई विषयों को छूते हैं, और विचारों को व्यवस्थित करने में मदद करने वाले कई पश्चिमी लेखकों का ऋण स्वीकार करते हैं । यह बात उनके दिमाग में पूरी तरह स्पष्ट है कि साहित्य में वस्तु और शिल्प का सम्बन्ध कहीं अधिक बुनियादी है, चाहे कई लोग इस भुलावे में रहते हों कि पानी अथवा शराब अथवा तेल सभी के लिए एक-सी बोतल में काम चल सकता है । उन्हें पता है कि कविता की तरह कहानी में भी कई बार शिल्प ही वस्तु होता है । यही कारण है कि उनकी कहानियों की विषयवस्तु आग से फूटते प्रकाश की तरह स्वत: बाहर आने लगती है । यह आग कई बार किसी चीड़ के जंगल से चुने गए तिनकों के जलाने से बनी होती है जो थोड़ी देर जल पाती है और फिर अन्धेरा हो जाता है । फिर भी दिमाग के कुछ अन्धेरे कोनों को रौशन करने में अवश्य सफल होती है ।

लेखक के सामने हमेशा असली चुनौती यह होती है कि अनुभव को किस तरह से स्मृति में पहुंचाया जाय और फिर बीती हुई चीजों के स्मरण के माध्यम से उसे मिथ की सार्वभौमिकता प्रदान की जाए और इस सारी प्रक्रिया में अपनी एकनिष्ठता बनाए रखे । जैसा अन्यत्र निर्मल जी ने कहा है - जहां अधिकतर लोग यह मानते हैं कि एक व्यक्ति भीड़ में भी अकेला महसूस कर सकता है, वहीं लेखकों में भी बहुत कम को यह पता है कि जब

वे एक बन्द कमरे में काम कर रहे हैं तब दरवाजे को ढकेलती भीड़ को कैसे रोका जाए ।

इस खतरे से निबटने में लेखक की असमर्थता ही आज के समय में भाषा के पतन का कारण बनी है, ऐसा निर्मल मानते हैं । हिन्दी गद्य के पतन का विवेचन करते समय वे असल में एक ऐसी बीमारी को समझ रहे हैं जिस ने किसी न किसी मात्रा में उन सभी भाषाओं को प्रभावित किया है, जिन का सामना जनोत्पीड़न, जनमाध्यम और विज्ञापन के कीटाणुओं से हुआ है । निर्मल जी अपनी भाषा की खुराक पर पूरा ध्यान देते हैं और उसे छलहरी और कमनीय बनाए रखते हैं । वे केवल न देखने वालों की आंखों को ठण्डे प्रतीत होते हैं । जिन्हें शब्दों की पहचान है, वे गरमाहट के उस सागर को महसूस कर सकते हैं जो उनके सतर्क शब्द प्रयोग में छिपा रहता है ।

परन्तु एक ओर जहां पर साहित्य में परम्परा और आधुनिकता की समस्याओं से जूझते समय निर्मल जी की पकड़ मजबूत दिखाई पड़ती है - हिन्दी में ऐसे बहुत कम होंगे जो बिना पांडित्य प्रदर्शन के काफ्का, सेवी-स्डाम, वाल्टर बेंजामिन और बीसियों विदेशी विचारकों को उद्धृत कर सकते हैं ।

राष्ट्रीय चेतना के टूटने या बिखरने के बारे में उनका कथन काफी सही है, मगर उनका यह दावा करना सरलीकरण लगता है कि एक ओर जहां आम जीवन में हम इतिहास की तेज धाराओं से अपनी संगति बिठाते रहे हैं, वहीं मानसिक स्तर पर हम ने घटनाओं के दबाव से स्वयं को बचाने का प्रयास भी किया है और इस प्रकार दोनों के बीच एक कठिन संतुलन हासिल किया है । वास्तविक सच्चाई यह है कि घटनाओं ने दोनों स्तरों पर गहरा प्रभाव डाला है तथा पुराने विचारों और पुरानी जीवन-शैली

के प्रति अविश्वास खत्म कर डाला है । शहरों तथा गांवों एवं वृद्ध और युवाओं के बीच एक खाई पैदा कर दी है तथा राष्ट्रीय पहचान की रचना के कार्य को अत्यन्त कठिन बना दिया है ।

किसी हद तक इस समस्या का कारण औपनिवेशिक शासन की लम्बी अवधि को माना जा सकता है परन्तु यदि शासन हमारे हाथ में रहा होता तब भी क्या समस्या में अधिक अन्तर आया होता ? क्योंकि इस के बाद भी हमें इस विडम्बनाग्रस्त सत्य का सामना करना पड़ता कि पुरानी परम्पराओं में अब उतनी क्षमता नहीं रही जिसके बूते वह दो-तीन औद्योगिक क्रांतियों, तेजी से बढ़ने वाली प्रौद्योगिकी और उससे प्रभावित सोचने और जीने के नए तरीकों की चुनौतियों का सामना कर सके । दोनों के बीच संगति बिठाने की प्रक्रिया फिर भी अत्यधिक तकलीफदेह और दुखदायी होती और इस तरह सफलता के आश्वासन से हमें वंचित ही रहना पड़ता ।

बुद्धिजीवी और आम जनता के बीच जिस खाई की बात निर्मल कहते हैं, वह एक ओर आधुनिक विचार के दबाव और दूसरी ओर गहरी जड़ों वाली परम्परा (उदाहरण स्वरूप - जाति का दबाव) से पैदा होनेवाली विचार और भावना के बीच चौड़ी होती खाई की अभिव्यक्ति है । गांधी का हवाला देना, बात को घुमाना कहा जाएगा क्योंकि महात्मा उन्हीं उन्हीं शक्तियों की पैदाइश थे जिनसे वे टकरा रहे थे । उन्होंने टालस्टाय, रस्किन और न्यू टेस्टामेंट से जो सीखा, उसका उनके विचारों को दिशा देने में उतना ही हाथ है जितना हिन्दू धर्म ग्रन्थों का रहा होगा ।

चाहे वह राजनीतिक विचारधारा रही हो (जैसे उदारतावाद, समाजवाद, फासीवाद, मार्क्सवाद) अथवा शासन (केन्द्रीय योजना, बढ़ता विकेन्द्रीकरण, नौकरशाही) अथवा आर्थिक योजना (भारी उद्योग बनाम हल्के उद्योग या उद्योग बनाम कृषि या कल्याण में बढ़ती सकल

राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि) बहस का मूल स्वर ही विदेशी है । दरअसल अवधारणा, तनाव, अलगाव और अन्तर्द्वन्द्व से निर्मित आधुनिक साहित्य की मूल संकल्पना की जड़ें परम्परा में न मिल कर औद्योगीकरण के कारण पैदा हुई जीवन की नई शर्तों में मिलती हैं । हो सकता है कि जड़ों तक वापस जाने की बात से हमें कुछ सांत्वना मिलती हो, पर हम लोग इस तरह से अपनी पकड़ के बाहर की शक्तियों को अनदेखा नहीं कर सकते जो बहुत देर से इन जड़ों को उखाड़ फेंकने में व्यस्त रही हैं । सामना अभी किया जाना है ।

ऐसे लेखक जो शब्दों से अधिक से अधिक बचता हुआ भाषा को शब्देतर माध्यमों में घोल कर, मानव नियति का संगीत सुनाता, सुनता हो, उसे शब्दों के लगभग निस्पंद हो चुके औजारों से विश्लेषित करना कठिन तो है ही, जोखिम भी है कि हम उस लेखक की रचना के साथ कोई हल्का व्यवहार न कर बैठें ।

दुख के मन को परखने का संघर्ष `एक चिथड़ा सुख` का विषय है । उपन्यास में इस संघर्ष के दो आयाम हैं । एक में बिहारी और डैरी, इरा और निन्नी भाई के बीच पिघलते-पथराते सम्बन्ध हैं और दूसरे में इन सम्बन्धों से उपजती करुणापूर्ण जटिल मानव नियति से साक्षात् होते, टकराते मुन्नू का किशोर मन है । अगर थोड़ा सरलीकृत करके कहें तो एक आयाम भोगना और दूसरा देखना है । दोनों ही आयाम हमारे समकालीन जीवन और स्थितियों, मनुष्य और चीजों, व्यवहार और भाषा, चिन्तन और संवेदन के बीच फैलते शून्य से उपजते दुख को उभारते हैं । इस दुख को भाषा ऐसा व्यक्तित्व प्रदान करती है कि वह एक दैहिक उपस्थिति की तरह सजीव होकर हमारे बीच चला आता है और अन्त में जीवन के चरम आलोक और मृत्यु की सीमारेखा पर छोड़कर अनायास गायब हो जाता है । कहां, पता नहीं चलता । पर एक चीज़ जो हमारे पास रहती है, रह

जाती है, एक समझ, एक लौटना, एक पछतावा ... । मित्री भाई की आत्महत्या शायद वही सीमारेखा है, जहां डैरी और बिट्टी को उनका दुख ले जाता है ।

'एक चिथड़ा सुख' में लगातार एक हवा चलती है, सूनेपन की, जो पात्रों और चीजों को धीरे-धीरे, लेकिन उनके भीतर तक पहुंच कर उन्हें सिहराती रहती है -'वह लौट आता था, बिस्तर के अपने हिस्से पर लेट जाता । वहां से दीवार पर एक बूढ़ी औरत का फोटो दिखाई देता था । बिट्टी से पता चला वह कोई मदर टेरेसा है... बिट्टी ने वह चित्र किसी अखबार से काट कर चिपकाया था । जब बाहर हवा चलती, फोटो फड़फड़ाने लगती, अंधेरे में आखें मूंदे वह चुपचाप उसकी फड़फड़ाहट सुनता रहता जैसे कोई चमगादड़ बार-बार उड़ता हुआ दीवार से टकरा जाता हो ।'

यह अकेलापन क्या है ? यह अकेलापन वह नहीं है जो भीड़ के बीच अकेले होने से उभरता है । दरअसल अपनी नियति के अन्धकार में, जहां तमाम तरह की लौकिक उपस्थितियां, सम्बन्धों से परे होकर मनुष्य अपने को खोजने, पाने और खो देने की विकलता भरा संघर्ष करता है, वहां वह सचमुच अकेला है । निर्मल वर्मा के पात्र इसी अकेलेपन की खोह में भटकते हैं ।

'पता नहीं, हिन्दुस्तान से बाहर उसे क्या मिलेगा ?'

'और यहां ?' बिट्टी ने डैरी को देखा, 'यहां उसे क्या मिल सकता है ?'

'मिलता कुछ नहीं है,' डैरी ने कहा, 'लेकिन जब वह यहां आई थी, थिएटर में उसका मन लगता था... मैं सोचता था, वह अपने काम में इतना उलझ जाएगी कि दूसरी चीजों के बारे में भूल जाएगी, जिनका कोई हल नहीं है ।'

'दूसरी चीजें ।' बिट्टी छतों के आर-पार देखने लगी, 'जिनका हल नहीं होता डैरी, क्या वे चीजें खत्म हो जाती हैं ?'

'खत्म नहीं होतीं ।' डैरी के स्वर में एक अजीब-सी कटुता भर आई है, 'लेकिन वे छोटी हो जाती हैं... अगर तुम्हें अपने काम में विश्वास हो, तो एक न एक दिन उन्हें भुलाया जा सकता है ।'

'बिट्टी धीरे से हंस दी ।

'... ... कोई बात नहीं बिट्टी ।' डैरी ने खाली निगाहों से बियर की बोतल को देखा, जो खुद खाली थी ।'वह अलग समय था - और हम दूसरे लोग थे, हम सोचते थे, एक दिन में सब कुछ बदला जा सकता है । वह पागलपन था ।'

'अच्छा ?' बिट्टी धीरे से हंस पड़ी ।

'यह नार्मल जिंदगी क्या होती है, डैरी ? ब्रेश्ट के नाटक ?' बिट्टी के होंठ एक अजीब मुस्कान में खुल गए थे, 'रिकार्ड ? किताबें ? ... शाम का बियर पीना ?'[1]

अर्थ की खोज अर्थ हो नहीं सकती । अर्थ मिलता नहीं । इस विडम्बना से साक्षात्कार और पलायन में उम्र बीत जाती है । जीवन में यह बोध इतनी आसानी या स्पष्टता से नहीं होता । वहां तो पलायन और साक्षात्कार का अन्तर भी धूमिल रहता है । आखिर में दोनों ही शब्द प्रासंगिक और प्रसंग जुड़ा होता है तथ्यों से । और तथ्य ? तभी तो निर्मल जी ने यह कथा एक लड़के की डायरी के माध्यम से कही है । डायरी जो समय को नहीं क्षणों को बांध कर रखती है ।

---

1. एक चिथड़ा सुख - निर्मल वर्मा

मौत पहले भी निर्मल जी के लेखन में आई है । पर अब वह जीने का अभिन्न अंग बन गई है । बीच बहस में एक मौत हुई थी । लगा था कि विवंगत के साथ ही उसके साथ होने वाली बहस भी समाप्त हो गई । पर बहस समाप्त नहीं हुई । हो भी कैसे ? बहस सिर्फ उससे तो थी नहीं, जो चला गया । वह तो अपने आप से है । उन से है जो जीवित हैं ।

'क्या यह सिलसिला कभी खत्म नहीं होगा ?'

'बीच बहस में ' के बाद 'जिन्दगी यहां और वहां ' में मौत दो जीवितों के बीच मंडराती है । उनके सम्बन्धों को प्रभावित करती है । 'एक चिथड़ा सुख' में मौत हमारी चेतना को और गहरे स्तर पर पकड़ती है । वह उससे जुड़ जाती है । यहां और वहां का अन्तर झरने लगता है । हम अपने को मार कर इसी जीवन में नया जन्म ले सकते हैं । किसी की मौत हमें नया जन्म दे सकती है ।

विडम्बना यह नहीं है कि हम दूसरों को नहीं समझते या यह कि अर्थ की खोज ही अर्थ बनने लगती है । तलाश तो वास्तव में अपनी होती है । दूसरों के माध्यम से अपनी तलाश । प्राचीन यूनानी दार्शनिक दृष्टि से हम एक ही नदी में दो बार प्रवेश नहीं कर सकते । सिर्फ नदी - बाह्य जगत की परिवर्तनशीलता को ही व्याख्यायित नहीं करती ।

'तुम क्या सोचते हो, अगर वह जिन्दा होती, तो मुझसे बहुत निराश हो जाती ?'

'बिट्टी ', उसका स्वर न जाने क्यों बहुत रुंधा-सा हो आया, 'वह तुम्हें बहुत मानती थी ।'

'मुझे नहीं, वह लड़की कोई और थी ।'

'और तुम... तुम कौन हो ?'

`मैं -` उसने बहुत धीमे से कहा, `मैं उसे ही ढूंढने दिल्ली आई थी ।`[1]

पर यह कौन है ? जिसे ढूंढने बिट्टी दिल्ली आई थी, इलाहाबाद से जिस की तलाश में वह दिल्ली भी छोड़ने का सोचती है ? और बिट्टी के वे दोस्त जो अपनी आधी जिंदगी बाहर गुजार कर लौटे थे ? या डैरी ? जिसकी बहन मुन्नू को कहती है कि वह डैरी है ही नहीं ?

कौन हैं वे लोग जो अपने को पा लेते हैं ? डैरी ? जो बिहार से लौट कर थिएटर में लग गए हैं, उन चीज़ों को छोटा करते हुए, भूलते हुए, जिनका कोई हल नहीं है । या नित्ती भाई । हरा और अपने परिवार के बीच झूलते, अधूरे नित्ती भाई । ऐसे अनोखे सम्पूर्ण ढंग से अधूरे कि अपना अधूरापन पाँगा सा जान पड़े । नित्ती भाई जो वह कर सके जो बिट्टी या उसके अन्य दोस्त नहीं कर सके ।

`एक चिथड़ा सुख` में लगातार स्ट्रिनबर्ग के एक नाटक का रिहर्सल चलता रहता है । नाटक और जीवन के पार्ट कुछ इस तरह घुलमिल जाते हैं कि उनको अलग करना कठिन ही नहीं, गलत भी लगने लगता है ।

`तुम रो रही हो ।` उसने कुछ ऐसे कहा, जैसे स्वयं बिट्टी को उस के रोने की सूचना दे रहा हो ।

बिट्टी ने सिर हिलाया, `मेरे पार्ट में रोना बदा है ।` उसका ऊपरी होंठ जरा-सा सिकुड़ गया, जैसे वह आधा मजाक हो, आधा सच...

---

1. निर्मल वर्मा - एक चिथड़ा सुख

'फिर क्या तुम्हारे आंसू असली नहीं थे ?'

'तुम्हें वे बनावटी लग रहे थे ?'

'बनावटी की बात नहीं... लेकिन अगर तुम पार्ट में रो रही थीं तो वे असली कैसे हो सकते हैं ?'[1]

और जब जिंदगी और नाटक को अलग किया भी जाता है तो पता चलता है कि जिन्दगी ज्यादा भयानक है, 'क्योंकि वहां किसी सीन को ढाला नहीं जा सकता... ।' न हम अपने लिए कुछ कर सकते हैं और न कोई हमारे लिए कुछ कर सकता है । भोगना ही एकमात्र रास्ता है, नियति है । बिट्टी की आकांक्षा भी यही है - वह भोगे जैसे इलाहाबाद की नुमाईश में तमाशे वाला बौना भोगता था ।

निर्मल जी एक ओर अपनी कहानी में मिथक-चेतना को उपलब्ध करने की कोशिश करते हैं तो दूसरी ओर अलगाव में ठिठुरते मनुष्य के रुदन को सुनने की कोशिश करते हैं । उनके कथा-साहित्य में प्रेम जीवन के किसी दीपक की तरह नहीं, उसकी कातर पुकार के रूप में विद्यमान है । शायद इसीलिए उनके स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को परम्परागत अर्थों में प्रेम का सम्बन्ध कहना बहुत सार्थक न होगा । उनके पात्र जब साथ होते हैं तो मुक्ति के लिए छटपटाते हैं और जब अलग रहते हैं तो साथ पाने की आकांक्षा में भटकते हैं । उनमें एक दूसरे के लिए लगाव है । पर संशय भी है जो लगाव को जड़ नहीं जमाने देता । वहां चाह का डर भी है और सुख भी । लेकिन वह न सही डर हो पाता है और न सही सुख । एक तरह से देखें तो दोनों बंटा हुआ । दूसरी तरह से देखें तो दोनों में से एक भी नहीं । सूखी गर्म रेत पर एक नंगी हड्डी-सा चमकता हुआ सम्बन्ध ।

---

1. निर्मल वर्मा - एक चिथड़ा सुख

निर्मल वर्मा के कथा-साहित्य में प्रेम का जो स्वरूप उपलब्ध है, उसे हम आसानी से स्वीकार नहीं कर पाते । ऐसा इसलिए कि भारतीय दर्शन और साहित्य में प्रेम अनन्यता का दूसरा नाम है । यहां अपने `आत्म` को त्यागना होता है - अपने `आत्म` का समर्पण करना होता है। कबीर ने इसे ही `सीस उतारकर ` रख देना कहा है , मीरा, चैतन्य महाप्रभु, रामी - चण्डीदास और आधुनिक साहित्य के देवदास तक इसके उदाहरण हैं । लेकिन हम पाते हैं कि निर्मल वर्मा के पात्र प्रेम में खुद को विलीन होने से बचाते हैं, ऐसा जतन करते हैं । `जिन्दगी यहां और वहां में दो प्रेमियों की यह स्थिति है -` उस रोज़ मिंटो रोड के ब्रिज के नीचे जब ऊपर रेल गुजर रही थी, उन दोनों ने एक ही इच्छा मांगी थी, एक दूसरे से अलग होने की । वे जितना एक दूसरे को चाहते थे, उतना ही एक दूसरे से छुटकारा पाने के लिए तड़पते थे ।`[1]

एक दूसरी कहानी `तीसरा गवाह` के नीरजा और रोहतगी साहब परस्पर प्रेम करते हैं और शादी करने कोर्ट पहुंचते हैं । लेकिन तीसरे गवाह के दस मिनट तक न पहुंच पाने के कारण, कहानी में ऊपर से ऐसा ही दीखता है, नीरजा वहां से गायब हो जाती है । सम्बन्ध यदि प्रेम का है तो `दस मिनट` को इतना निर्णायक नहीं होना चाहिए । इस विरक्ति और छटपटाहट का जवाब कहीं-न-कहीं रोहतगीसाहब खुद देते हैं --

`मुझे लगता है कि बहुत से आदमी जिनमें से मैं भी एक हूं, बहुत दूर तक चले आते हैं । फिर हमारे जाने बिना कहीं बहुत भीतर कुछ खामोश हो जाता है । हम बड़े हो गए हैं उम्र में, अनुभव में, किन्तु खामोशी का

---

1. निर्मल वर्मा - कव्वे और काला पानी

दायरा बढ़ता जाता है । कोई भी शायद साझीदार नहीं हो पाता ... ।'[1]

यह है न जुड़ पाने का कारण - बीहड़ अकेलापन । कह सकते हैं कि अकेलापन बीसवीं शताब्दी के साहित्य की केन्द्रीय समस्या है । काफ्का, ब्रूस्त से लेकर मार्क्वेज जैसे कथाकार तक और ईलियट से लेकर ब्राड्स्की जैसे कवि तक सब के लेखन में यह अकेलापन मनुष्य की सबसे बड़ी यातना के रूप में उभरता है । समकालीन मनुष्य का अकेलापन निर्मल जी के भी लेखन की मूल समस्या है । वे अपनी डायरी में लिखते हैं -'मैं हमेशा अकेलेपन पर शोक करता रहा हूं ।'[2] 'एक चिथड़ा सुख' में डैरी की बहन भी कहती हैं,'जब तुम्हारी कज़िन् यहां आती है, मैं उसे छिपकर देखती हूं । वह यहां आकर अकेली बैठ जाती है । पता नहीं क्या सोचती रहती है और तब मुझे लगता है शायद यह दुख है ।'

निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में दुख एक आघात की तरह स्पष्ट नहीं होता, वह कोहरे की तरह कथा-संसार में व्याप्त रहता है । उंगली उठा कर उसके कारण को बताना कठिन है । गहरे अर्थों में उसका कारण इतिहास है, जिसकी चर्चा ऊपर हम कर आए हैं । यही कारण है कि निर्मल जी में 'इतिहास' के प्रति एक तिरस्कार का भाव मौजूद है । वह मानते हैं कि अर्थ नहीं मिल सकता है जो गैर-ऐतिहासिक और निजी है । इसके लिए वह मिथक के पास जाते हैं । ध्यान दें कि यह आधुनिकतावाद का प्रमुख तत्व है । यह अकारण नहीं है कि उनके लेखन में जीवन के आद्य-रूप को पाने

---

1. निर्मल वर्मा - परिंदे
2. निर्मल वर्मा - धुंध से उठती धुन

की एक दुर्निवार लालसा दिखती है, ऐसा जीवन जो कि निराकांक्षा और निष्कवच हो ।

इस तरह हम निर्मल जी के चिन्तन से होते हुए यहां पहुचे कि निर्मल जी प्रेम को इतिहास के विपरीत मिथकीय परिवेश में ले जाते हैं । वह प्राय: अपनी रचना सामग्री वहां से उठाते हैं जहां उसकी वास्तविकता ऐन्द्रनात्मिक झिलमिलाहट में बदल चुकी होती है । वह ऐसा इसलिए करते हैं क्योंकि `कला मनुष्य के उन स्मृति-खण्डों को नष्ट होने से बचाती है जिन्हें इतिहास भविष्य के जोम में आकर कूड़ेदानी में फेंक देता है । लेकिन बात इतनी भर नहीं है । निर्मल जी एक इन्टव्यू में कहते हैं - मेरे लिए कहानी में रिश्तों का पैटर्न केन्द्रीय महत्व का है । यदि उससे प्लाट बनने लगता है तो मैं उसे छोड़ता या बिगाड़ता नहीं । किन्तु यदि वह पैटर्न किसी प्लाट की बैसाखी के बिना भी उद्घाटित होने लगता है, तो मुझे बुरा नहीं लगता ।`[1] आगे वह कहते हैं - कहानी में एक भावनात्मक ढांचा अवश्य होना चाहिए, कथानक पर उनका जोर नहीं है । यह महत्वपूर्ण है, क्योंकि कथानक साहित्य का समाज होता है । और समाज एक ऐतिहासिक परिघटना है । यहां अर्थ संघर्ष से प्राप्त होता है । निर्मल जी के समकालीन कथाकार, अमरकांत, रेणु, कमलेश्वर, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, मोहन राकेश, ज्ञानरंजन आदि के पात्र संघर्ष करते हुए प्रेम अर्जित करते हैं और सार्थक होते हैं - या फिर उन्हें प्रेम नसीब नहीं होता, उसे पाने की प्रक्रिया में टूट जाते हैं और इस तरह अर्थ प्राप्त करते हैं । लेकिन निर्मल जी के पात्र सिर्फ आत्म-संघर्ष करते हैं । तात्कालिक बाह्य यथार्थ में उनका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं होता । असल में निर्मल जी अपनी कहानियों को `ह्यूमन टाइम` में घटित करते हैं । यानी स्मृति का संसार । स्मृति में क्रमबद्धता नहीं होती । उसे निबाहना अपेक्षाकृत आसान होता है । वहां

---

1. निर्मल वर्मा - दूसरे शब्दों में

भाषा और विचार की भूमिका बढ़ जाती है । इसलिए निर्मल जी के यहां गीतात्मक रूप है । भाषा का रचाव है ।

प्रेम अकेलेपन और अधूरेपन के अतिक्रमण का ही एक प्रयास है । लेकिन प्रेम करते हुए भी इस अकेलेपन से मुक्त न हो पाने की आत्मवेदना और उसकी दुखांत परिणति ही निर्मल वर्मा के कथा-साहित्य का केन्द्रीय स्वर है ।

--

तीसरा अध्याय

निर्मल वर्मा के कथा-साहित्य में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का स्वरूप

निर्मल वर्मा के कथा-साहित्य में स्त्री-पुरुष संबंधों का स्वरूप

साहित्य में आधुनिक भावबोध की पहली चेतना ईश्वरहीनता की अवधारणा से हुई थी । एक ईश्वरविहीन विश्व में रहने के अहसास ने मनुष्य के पूरे होने के क्रम को परिवर्तित कर दिया । इस ईश्वरहीनता ने उसे अपना स्वामी और दास दोनों बनाया । उसे सुरक्षा दी, आत्म-बल दिया, और अधिक से अधिक अरक्षित भी किया । उसे क्रूर, हिंसक और आत्मघाती भी बनाया । ईश्वर नहीं है तो कुछ भी किया जा सकता है - क्योंकि कुछ भी करने या होने का हम से बाहर कोई साथी या नियंत्रक नहीं है । विश्व को ईश्वर विहीन बनाने में विज्ञान की सबसे बड़ी भूमिका है । विज्ञान ने धर्म तथा ईश्वर का विकल्प प्रस्तुत करने की कोशिश की जिसकी शुरुआत गैलिलियो के साथ ही हो गई थी ।

डेनिश चिंतक एवं दार्शनिक किर्केगार्द ने सत्य को आत्मपरक कहकर विज्ञान के प्रयोगात्मक वस्तुवाद को नकारा और एक ऐसे व्यक्तिवाद को जन्म दिया जो एक सीमा तक ईश्वर पर विश्वास करता रहा, लेकिन आगे चल कर अस्तित्ववादी वैयक्तिकता में घुल गया, जिसने घोषित किया कि मनुष्य अकेला रहने के लिए अभिशप्त है । यह एक स्पष्ट विरोधाभास था जहां आकर ईश्वर तथा विज्ञान दोनों से पृथक् आधुनिक बोध में एक नया रहस्यवाद पनपने लगा । मनुष्य उन सारी शक्तियों के विरुद्ध हो गया जो उसके बाहर हैं और दूसरों को अथवा बाहरी विश्व को अपने से बाहर करने की कोशिश में वह स्वयं को विश्व से बाहर अनुभव करने लगा । दूसरे लोग उसे नरक लगने लगे । (हेल इज़ अदर पीपल - सार्त्र) विज्ञान निर्मित आधुनिक विश्व को दो महायुद्धों ने एक बड़े द्वन्द्व में डाल दिया । आधुनिक भावबोध के अजनबी का इससे गहरा सम्बन्ध था । फ्रायड का

पूरी सभ्यता के विकास क्रम में असंतोष दिखाई पड़ा । नीत्से तथा फ्रायड दोनों ने अपने-अपने ढंग से यह महसूस किया कि पूरी सभ्यता और संस्कृति विरोधाभासों का समूह है । उनके सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह आया कि या तो हमें इस सभ्यता को पूरी तरह अस्वीकार कर देना है या इसके विरोधाभासों के साथ उसे स्वीकार करना है । स्वीकार करने के इस क्रम में ही हम अपनी समस्याओं के लिए कुछ कर सकते हैं ।

इस प्रकार आधुनिक भावबोध का पहला चरण जो ईश्वर के अस्तित्व को नकारने से आरम्भ हुआ था, बीसवीं शताब्दी तक आते-आते सभ्यता के प्रति सन्देह में बदल गया । इससे पहले औद्योगिक सभ्यता के अस्वीकार का विद्रोह स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन के रूप में सामने आया था । लेकिन वह अन्ततः एक अमूर्त और रोमांटिक आन्दोलन के रूप में ही समाप्त हो गया था । बीसवीं शताब्दी के साथ ज्ञान-विज्ञान ने ज्यादा ठोस तथा प्रामाणिक ढंग से सभ्यता के प्रति सन्देह करना प्रारम्भ किया जो क्रमशः आधुनिक भावबोध का एक प्रमुख चरित्र लक्षण बन गया ।

सभ्यता से समानान्तर यह सन्देह मानवीय मूल्यों के प्रति भी उत्पन्न हुआ जो स्वाभाविक ही था, खास कर इन मूल्यों को सबसे बड़ी चुनौती अस्तित्ववादी विचारधारा की ओर से मिली । काफ्का, सार्त्र, कामू आदि के उपन्यासों ने इन मूल्यों और अवधारणाओं से पूर्व जीवन के होने का दावा किया और मूल्यों को लगभग निषेध करते हुए पाया कि जीवन एक अर्थहीन तथा कार्यकारण से रिक्त प्रक्रिया है ।

'मैं जिन लोगों को प्यार करता हूं, उनके विषय में लगातार नहीं सोचता, लेकिन जब मैं उनके सम्बन्ध में नहीं सोच रहा होता, तब भी दावा

करता हूं कि मैं उन्हें प्यार करता हूं और मैं अपने वास्तविक अस्तित्व का एक अमूर्त अनुभूति से किसी तात्कालिक भाव के अभाव की स्थिति में भी समझौता करने में समर्थ हूं।[1] अतः इस अनुभव प्रक्रिया से गुजरने वाले आधुनिक व्यक्ति के लिए प्रेम या वैयक्तिक प्रेम का कोई अस्तित्व नहीं है। कामू के विख्यात उपन्यास - द आउटसाइडर - का नायक कहता है - 'मेरे लिए प्रेम का तात्पर्य इच्छाओं का मिश्रण, कोमलता और बुद्धिमत्ता है जो मुझे किसी एक से जोड़ती है। लेकिन प्रेम का लक्ष्य, वह कोई एक नहीं हो सकता। आधुनिक मनुष्य की पकड़ जैसे-जैसे बाह्य यथार्थ और वस्तुओं पर से होती हुई संवेदना को पुनः प्राप्त करना चाहता है, प्रेम के द्वारा वह अनुभव करना चाहता है कि उसकी अनुभव क्षमता अभी शेष है।

अर्थहीनता से उत्पन्न इस अनुभूति ने साहित्य में ऐसे पात्रों की संख्या बढ़ाई जो अनिर्णय, अनिश्चय तथा दुविधाओं के शिकार थे। यह अनिश्चयता एवं निष्क्रियता वैज्ञानिक सभ्यता के प्रति इस मोह-भंग से उत्पन्न हुई थी कि हम दुनिया को न बदलसकते हैं, न उसे जीत सकते हैं। यहां इसलिए अपराध की सजा भुगतनी पड़ती है। यह एक अर्थहीन और अंतहीन सिलसिला है जिसमें हम केवल भटक सकते हैं। दास्तोवोवस्की के उपन्यास ब्रदर्स करमाजोव एवं काफ्का के ट्राएल तथा कैसल के पात्र ऐसे ही हैं।

---

1. Literary Essays - J.P. Sartre, p. 31
2. Existentialism and Human Emotions – J.P. Sartre, p. 60.

दूसरी ओर इस बोध ने ऐसे चरित्र भी बनाए जो लड़ने की नियति जानते हुए भी लड़ते हैं । व्यक्ति या विचारधाराएं विश्व के अन्धे क्रम को नहीं बदलसकतीं, फिर भी एक एबसर्ड करेज के साथ उन्हें संघर्ष करना ही है । यह जानते हुए कि हारना है, फिर भी लड़ना है : मैलविले या मोबिन्कि तथा हेमिंग्वे के उपन्यास संघर्ष की इसी नियति से जुड़े हुए हैं ।

इस भावबोध से युक्त निषेध तथा अस्वीकार के प्रश्न आगे चलकर आस्था अथवा विश्वास के प्रश्न भी बन गए । अस्वीकार की स्थिति एक विकल्पहीन निषेधात्मक स्थिति थी । मनुष्य की मुक्ति के लिए कोई मार्ग नहीं देता, न धर्म, दर्शन, न कला, न विज्ञान । वह फीसिफस की भांति उस पत्थर को ढोने के लिए विवश है, बल्कि अभिशप्त है जिसे वह कभी पहाड़ की चोटी तक नहीं पहुंचा सकता । आदमी उस कठघरे में बन्द है जिसमें न वह बैठ सकता है, न खड़ा हो सकता है, न सो सकता है । वह केवल वहां रो सकता है । इससे बाहर निकलने का रास्ता नहीं है ।

इस परिस्थिति के अन्तर्गत जिस सवाल को अलग-अलग शिविर में - निश्चित रूप से अलग-अलग सन्दर्भों में - उठाया गया, वह अलगाव की समस्या थी । इस भावबोध के विकास के साथ रूढ़ियों तथा स्वीकृत मानवीय मूल्यों का नकाब उतारने का जो अभियान चल रहा था - उसमें अस्तित्ववादी चिंतकों ने अलगाव की इस समस्या को चयन तथा निर्णय के आधार पर हल करने की कोशिश की । लेकिन चिंतकों का एक वर्ग ऐसा था जो यह जानता था कि अनिर्णय, निष्क्रियता तथा अनिश्चयात्मकता के मूल में जो अलगाव की भावना काम कर रही है, उसका समाधान किसी वैयक्तिक चुनाव या तत्ववादी तलाश में नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना के विश्लेषण में है ।

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक आते आते संसार के अधिकांश देशों में किसी-न-किसी प्रकार का प्रजातंत्र स्थापित हो गया जिसके परिणामस्वरूप सामान्य मनुष्य को मौलिक अधिकार तो प्राप्त हो गए, लेकिन तीव्र औद्योगीकरण तथा उत्पादन-वितरण सम्बन्धी जटिलताओं, महानगरों के विस्तार आदि ने मिलकर एक ऐसे परिवेश का निर्माण किया जिससे मानवीय सम्बन्धों में भी आमूल परिवर्तन हुआ ।

औद्योगिक सभ्यता से उत्पन्न मानवीय सम्बन्धों में दो चरित्र-लक्षण विशेष रूप से उभर कर सामने आए - अलगाव तथा अमानवीकरण । भारत जैसे देश में अलगाव की भावना एक और आयाम धारण कर लेती है - यह है परंपरागत समाज और आधुनिक जीवन के बीच का तनाव-क्षेत्र ।

औद्योगिक समाज में मनुष्य की भौतिक सफलता सबसे बड़ी चीज है - मनुष्य कुछ नहीं है । इस सभ्यता में मनुष्य ने अपना आत्म (सेल्फ) खो दिया है और वह मशीन की तरह चल रहा है । उसका कोई केन्द्र नहीं है । वह प्रेम में भी एक मशीन है - आत्मनिर्वासित व्यक्ति । एक व्यक्ति बेहद ठंडी भाषा में अपनी प्रेमिका से कहता है कि पैसा सफलता और उसकी अपनी जिन्दगी प्रेम की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है । उसकी प्रेमिका जब उससे पूछती है कि 'क्या तुम मुझे प्यार नहीं करते ? तो वह कहता है, 'मैं नहीं जानता, इसका मतलब क्या होता है ? क्या कोई आदमी कभी प्यार करता है ? मैं अगले महीने से तुम्हें प्यार नहीं करूंगा ।... फिर क्या ?... फिर, मुझे हल्का सा दुख होगा, कुछ भयानक रातें में गुजारूंगा और फिर सब कुछ ठीक हो जाएगा ।'[1]

---

1. The Necessity of Art, p. 92

अधिकांश समकालीन कथा साहित्य प्रेम के ऐसे ही उदाहरणों से भरा पड़ा है । अर्नेस्ट हेमिंग्वे की प्रसिद्ध कहानी `सिपाही का घर` का सिपाही युद्ध की विभीषिका का साक्षात्कार करने के बाद जब अपने घर लौटता है तो बिलकुल संवेदनाशून्य मनुष्य में बदल चुका है, उसकी मां जब उससे पूछती है कि क्या तुम ईश्वर में विश्वास नहीं करते ? या तुम मुझे या अपने पिता को प्यार नहीं करते ? तो वह ठंडी और बेज़ान आवाज़ में उत्तर देता है - नहीं । सिपाही और उसकी मां दोनों दो दुनियां के निवासी हैं और दोनों में कोई प्रेषणीयता नहीं है । यहां अलगाव, अमानवीकरण तथा यह इनसे उत्पन्न असम्प्रेषणीयता ने प्रेम को असम्भव बना दिया है ।

आधुनिक व्यक्ति की संवेदना में उत्पन्न अलगाव तथा अमानवीकरण की इस समस्या को अस्तित्ववादी चिंतकों के अतिरिक्त मार्क्सवादी चिंतकों ने विस्तार से विश्लेषित किया है । उनके अनुसार पूंजीवादी व्यवस्था एक ओर तो राजनैतिक स्वतंत्रता के सिद्धान्त पर आधारित है और दूसरी ओर उसका अर्थतंत्र तथा सामाजिक सम्बन्ध भी बाज़ार के द्वारा निर्धारित है । इस व्यवस्था में बाज़ार सबसे बड़ी नियामक शक्ति है और इसी कारण श्रम तथा सम्बन्ध दोनों विनिमय की वस्तु बन जाते हैं । यह विनिमयता या इस्तेमाल भी उपयोगिता के आधार पर नहीं, मांग के आधार पर होती है । यहां असली मूल्य मांग का ही होता है, उपयोगिता का नहीं, अत: मांग न होने पर इस बाज़ार में महत्वपूर्ण तथा उपयोगी वस्तु भी महत्वहीन और मूल्यहीन हो जाती है । इस मांग का निर्माण भी कृत्रिम तरीकों, राजनैतिक प्रभावों तथा प्रचारों के द्वारा किया जाता है । पूंजीवादी व्यवस्था की इस संरचना पर सीधा प्रभाव आधुनिक मनुष्य के चारित्रिक संगठन पर पड़ता है । पूंजी पूंजी को खींचती है । महानगर विशाल औद्योगिक योजनाओं के जाल बिछाते हैं । छोटे प्रतिस्पर्धी क्रमश:

क्षेत्र से बाहर हो जाते हैं । धीरे-धीरे पूंजी का महादानव सब कुछ अपने भीतर आत्मसात कर लेता है । व्यक्ति समझता है कि वह स्वतंत्र है, उसे राजनैतिक तथा सामाजिक स्वतंत्रता हासिल है और वह स्वेच्छा से, स्वाधीनतापूर्वक प्रेम, विवाह तथा अन्य मानवीय सम्बन्ध स्थापित कर सकता है । किन्तु वह जो कुछ भी करता है, इस प्रदत्त फ्रेमवर्क के अधीन ही करता है । इसी के भीतर अलगाव की प्रक्रिया भी काम करती रहती है ।

इस व्यवस्था के बाज़ार हैं एवं उत्पादन केन्द्र हैं । श्रम को अमूल्यित करने के तरीके हैं । इसमें श्रम संघ होते हैं, जो स्वयं एक नौकरशाही व्यवस्था द्वारा निर्मित तथा प्रचलित होते हैं । यह संघ जो समझौते करता है, वे श्रमिक हित में कम, नौकरशाही के हित में ज्यादा सिद्ध होते हैं । पूंजी एक जगह एकत्र हो जाती है, होती रहती है एवं श्रमिक अपने श्रम से, प्रबन्धकर्ता प्रबन्ध क्षेत्र से तथा स्वामी अपने व्यवसाय से अलग हो जाता है । सभी की दिलचस्पी केवल एक चीज़ में रह जाती है - वह है पैसा ।

इसके अन्तर्गत श्रम विभाजन श्रमिक को आदमी न रख कर मशीन बना देता है । उसे एक काम दे दिया जाता है जिसे लगातार यांत्रिक ढंग से करते रहना है । वह नहीं जानता इस काम का अर्थ क्या है, उपयोग क्या है । वह एक चेहराविहीन दृश्य के लिए खटता है । वह श्रम कर रहा है, लेकिन यह नहीं जानता कि उसका उपयोग और उपभोग कौन करेगा । अलगाव अधिकाधिक बढ़ता जाता है । इस प्रकार यह व्यवस्था व्यक्तियों को अपने उपयोग के लिए सांचे में ढाल देता है । कहना बेहतर होगा कि वह व्यक्ति नहीं, उपयोग की जाने वाली एक मशीन बन जाता है । अतः सारे मानवीय सम्बन्ध भी वस्तुतः व्यवस्था की इस संरचना से ही

निर्धारित होते हैं ।"[1]

यह अलगाव ही तनाव, अकेलापन और ऊब पैदा करता है जिसे भरने के लिए इस व्यवस्था ने दूसरा बाज़ार खोल रखा है - हिंसा से आक्रांत मनोरंजन । मनोरंजन के शोरगुल से भरे फैशनेबल साधन, नाइट क्लब्स, डिस्को थेक, रंगीन फिल्में आदि । ये उत्तेजक साधन उसकी संवेदना को और विकृत तथा शून्यता से भर देते हैं । उत्तेजना की यह चाह बढ़ती जाती है । व्यक्ति इस में और अधिक फंसता जाता है ।

इन सभी स्थितियों, प्रवृत्तियों और परिवर्तनों का प्रभाव मनुष्य के अवचेतन पर पड़ता है । उसके सम्बन्ध के स्वरूप पर पड़ता है । वह प्रेम में एक हिंस्र उत्तेजना खोजता है । यंत्र प्रेम नहीं कर सकता, केवल प्रेम का अभिनय कर सकता है । केवल अपने को दूसरे की ओर उछाल सकता है । वह अनजानी और अदृश्य उत्तेजना की आकांक्षा में विवाह करता है और शापग्रस्त जीवन को सुखमय बनाने के लिए उसी सभ्यता के बनाए हुए नुस्खे आजमाता है । उनके बीच भी वैसे ही समझौते होते हैं, जैसे मालिक और मजदूर संघ के बीच होते हैं । यहां प्रेम में तादात्म्य और तन्मयता की भावना पैदा नहीं होती ।

श्रीकान्त वर्मा के अनुसार, "हमारी प्रेम करने की क्षमता नष्ट होती जा रही है ।" क्योंकि स्त्री जब तक केवल एक समर्पित थी... तब प्रेम का अर्थ केवल देना था । उसका स्थान अब एक आत्म-सजग स्त्री ने ले लिया है ... संकट उस शिक्षित और समृद्ध समाज में है और एक नए किस्म की

---

1. Erich Fromm – The Art of Loving, p. 72.

अनिश्चितता ने जन्म ले लिया है, प्रेम भी आखिर में निरर्थकता तक ही पहुंचता है... प्रेम अर्ध-स्वीकृति है या अर्ध-अस्वीकृति, यह पता कर पाना कठिन हो गया है... अपने को स्वीकार करते हुए दूसरे को स्वीकार न कर पाना ही सबसे बड़ी विडम्बना है... प्रेम में भी अकेलापन और अकेले न रह पाने की नियति भी प्रेम है... प्रेम एक अनिर्णय की स्थिति है... प्रेम करते हुए प्रेम के अनुभव से समृद्ध होते हुए भी वह निर्णय नहीं कर पाता, या उसे पता नहीं चलता कि वह किसे प्रेम कर रहा है । वह आगे लिखते हैं -'यह संसार इसलिए निष्क्रिय नहीं है कि करने को कुछ नहीं है, बल्कि इसलिए निष्क्रिय है कि हर कुछ करने की अन्तिम परिणति निरर्थकता है । बाहर और अंदर की दुनिया में एक असंगति है । इस असंगति की पैदाइश है न्यूरोसिस... प्रेम में एक न्यूरोसिस है ।'[1]...

श्रीकान्त वर्मा की ही एक कविता है जिसमें उन्होंने लिखा है कि प्रेम अकेले होने का एक और ढंग है ।'यह अकेले होने का', छूट जाने का, 'एक और ढंग' नई कहानी का लगभग केन्द्रीय विषय रहा है ।

देवीशंकर अवस्थी ने नई कहानी में चित्रित प्रेम के चरित्र पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि 'प्रेम एक विडम्बना है - इसे 'यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता' के भर्तृहरि भले ही मान लें, पर लहना सिंह, चम्पा या मधुलिका कैसे स्वीकार कर सकते हैं । वे उसके लिए गोलियों से शरीर छिदवा लेंगे, आजीवन कुमारी रह कर आकाशदीप जलाती रहेंगी और कर्तव्य को पूरा करने के बाद प्रेम के लिए प्राणदण्ड मांग लेंगी । तनिक सूक्ष्मता से पड़ताल कीजिए : इस प्रेम के बाधक कौन हैं ? समाज - जो

---

1. ज्ञानोदय, अक्टूबर 1963 में श्रीकान्त वर्मा का पत्र

लहना सिंह को पूछे बिना उसकी किशोरी प्रिया को किसी और का शाल ओढ़ा देता है, पिता (यानी परिवार) जो मर कर भी (या मर कर ही) चम्पा के मार्ग को धोके हुए है, देश (नाना प्रकार के कर्तव्य) जो मधुलिका के सहेट को धरती की अपेक्षा स्वर्ग-लोक की ओर खिसका देते हैं ।'[1]

यह है रोमांटिक प्रेम । प्रेम के लिए इस स्थिति की सहज परिणति है कि इन अवरोधों के सन्दर्भ में आत्म-बलिदान की मुद्रा स्वीकारी जाए । इसलिए प्रेम के परिभाषाकारों ने प्राय: उसे, बल, त्याग, नि:शेष समर्पण सतत वेदना, सतत आत्मदान आदि महिमाशाली शब्दों से अलंकृत किया है । यही शरच्चन्द्र करते हैं और यही जयशंकर प्रसाद ।

प्रकृति की हर धड़कन में अपने ही प्रेम तथा प्रकृति हर छवि में अपनी प्रिया को निहारने वाले किशोर प्रेम को अज्ञेय के पठार ने धीरज और विवेक देना चाहा है । रोमांटिक प्रेम ने वास्तविकता के विविध स्तरों की चेतना मिटा दी थी । प्रेम जैसे संकुल मनोभाव को एवं प्रेम-व्यापार की संकुल प्रक्रिया को छायावादी चेतना ने एकदम सपाट झीना आवरण बना कर सभी पर उसी का वितान तान दिया था । अज्ञेय ने जब काव्य के स्तर पर इस जाल को तोड़ा तो कथा के स्तर पर भी `वास्तविकता` की पर्तों का उद्घाटन उद्दिष्ट बना ।`पठार का धीरज` में प्रेम की प्रकृति को पहचानने की चेष्टा है । और यह किसी शाश्वत त्रिकोण से हटकर या बचकर है । किशोर और प्रमीला `आमने-सामने हैं ।` वे छायाओं से नहीं वास्तविकता से प्यार करते हैं - एक-दूसरे से । यहां शरीर भी महत्वपूर्ण है । सम्भवत: यही वह बिन्दु है, जहां से शारीरिकता

---

1. देवीशंकर अवस्थी - नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति, पृ0 156

का उदय होता है । प्रेमी-प्रेमिका को आमने-सामने खड़ा करने के साथ ही शरीर-पहचान की प्रक्रिया भी शुरू होती जाती है । कोई किसी से प्यार क्यों करे ? यह सवाल लाजवाब है । प्रेम, घृणा, करुणा आदि तर्क से परे रहने वाली प्रवृत्तियां हैं और उनकी एक सीमा तक ही सामाजिक या युगीन व्याख्या संभव है । यों स्त्री-पुरुष के प्रेम-प्रसंग में किसी लैंगिक आकांक्षा का लगाव सहज भी माना जा सकता है और सहजात भी । फिर मनोविज्ञान एवं मार्क्सवाद की स्थापनाओं के प्रभाव केतले पर बोध विकसित हुआ हो तो क्या आश्चर्य ? यशपाल, अश्क, उग्र एवं उर्दू के कृष्णचन्दर बेदी आदि लेखकों में यही पक्ष झलक उठता है । प्रेम यहां प्रदान ही नहीं आदान भी है । देवीशंकर अवस्थी के अनुसार `इस स्थिति की परिणति जन्तु-तर्क में है और सतत यात्री स्वं दाता की मुद्रा में रहने वाले अज्ञेय ने इस जन्तुत्व की भी कहानियां लिखी हैं । पर ये प्रेम कहानियां नहीं, प्रेम के नाम पर किए जानेवाले आखेट हैं । मन में एक आशंका और उठती है, कहीं ऐसा तो नहीं है कि शरीर के वास्तव के ज्ञान के बाद के सारे बलिदानी नायक-नायिका अधिक कमजोर, चिड़चिड़े और नपुंसक हो गए हों । असाधारण तो वह राजकुमार था जो यह जानते हुए ही कि राजकुमारी किसी और की वाग्दत्ता हो गई है, उस पर आक्रमण कर देता है । तो क्या यह माना जाए कि यह जो `एण्टी-हीरोइक` हीरो है, वही नयी प्रेम कहानी का नायक है ?`[1]

राजेन्द्र यादव के `छोटे छोटे ताजमहल` के विजय और मीरा (या देव और राका) हों, रामकुमार की `यात्रा` के वह (नायक संज्ञाहीन भी हो गया) और देवा हो, निर्मल वर्मा की कहानी `जिन्दगी यहां और वहां ` के फेंटी और बिट्टी हों या मोहन राकेश की ~~`एक और ज़िन्दगी`~~ या कमलेश्वर की `राजा निरबंसिया` के नायक-नायिका हों, सभी एण्टी-

---

1. देवीशंकर अवस्थी - `नई कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति, पृ० 158

हीरोइक हैं । सभी अपने में सिमटे, कुचले और नपुंसक । ज्यों-ज्यों ये एक दूसरे से परिचित होने की कोशिश करते हैं, त्यों-त्यों कुछ अधिक अपरिचित होकर एक दूसरे के समीप से गुजरते हैं --

हम एक दूसरे से परिचित
होने की कोशिश में
कुछ अधिक अपरिचित होकर गुजर रहे हैं
दूसरे के समीप से लगातार
प्रत्येक सुबह तुम लगती हो
कुछ और अधिक अजनबी मुझे ।[1]

श्रीकान्त वर्मा की यह काव्य-उक्ति तमाम नयी प्रेम-कहानियों में भी विद्यमान है ।

निर्मल वर्मा के कथा-साहित्य में मनुष्य की गहन मानसिक पीड़ा और संकट उभर कर सामने आते हैं । प्राय: उनका कोई उत्तर हमारे पास नहीं होता । दरअसल निर्मल जी प्रदत्त यथार्थ से परे जाकर मनुष्य के अनेक स्तरीय यथार्थ को अपना रचना-विषय बनाते हैं । उनके पास विशाद से भरे हुए और अनकिए अपराध की सजा भुगत रहे होते हैं । उन्हें अपने अपराध का पता नहीं चलता, लेकिन वे शापग्रस्त जीवन जीते हैं । इसलिए निर्मल वर्मा के कथा-साहित्य में स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को किसी सरलीकरण में विघटित नहीं किया जा सकता । अगर ऐसा कर दिया जाए तो ये रचनाएं अपने अर्थ खो देंगी ।

---

1. श्रीकांत वर्मा की कविता का एक अंश

निर्मल वर्मा के कथा-लोक में प्रेम एक विडम्बनापूर्ण स्थिति में है । ऊपर से देखने पर तो वह अकेली आत्माओं का करीब आना प्रतीत हो सकता है, लेकिन सचमुच ऐसा होता नहीं है । ये पात्र अपने अकेलेपन से भागने के लिए एक दूसरे के करीब नहीं आते, बल्कि इसके ठीक विपरीत अपने अकेलेपन के आलोक को पाने के लिए ही ये प्रेम करते हैं ।

'मैं दो लोगों के बीच के सम्बन्ध का सबसे बड़ा दायित्व यह मानता हूं ; इनमें हर एक को दूसरे के एकान्त की रक्षा करनी चाहिए... ।'

एक पत्र में रायनार मारिया रिल्के -

'लेकिन प्रश्न है एकान्त या अकेलापन ? लेकिन प्रेम की विडम्बना सिर्फ इतनी ही नहीं है, यहां प्रेमियों के अस्तित्व बोध में कुछ ऐसा परिवर्तन आता है जिसके कारण किसी और से पहले प्रेमी स्वयं को नया महसूस करने लगता है । 'जिन्दगी : यहां और वहां ' में फैदी कहता है, सोचता है - विश्वास नहीं होता, मैं वही आदमी हूं जो चार महीने पहले था... ।'

यह कौन-सा परिवर्तन है कि प्रेमी को स्वयं वह अजनबी लगने लगता है ।[1]

ऊपर में श्रीकांत वर्मा की कविता उद्धृत की गई है । उनकी ही कविता की एक और पंक्ति है - 'प्रेम अकेले होने का एक और ढंग है ।'

इस अकेलेपन के रहस्यलोक में निर्मल वर्मा के सारे पात्र जीते हैं -

---

1. उदयन वाजपेयी - निर्मल वर्मा, पृ० 87

यदि उसे जीना कहा जा सके । वे दूसरे को पाना भी चाहते हैं और अपने अकेलेपन के घेरे को भी बना कर रखना चाहते हैं । 'ज़िंदगी : यहां और वहां' का यह अंश देखें --

'एक बार ऊपर रेल जा रही थी और वे नीचे थे । वे नीचे बस में बैठे थे । ऊपर मिंटो रोड का पुल था । 'तुमने कुछ मांगा ?' उसने उत्सुकता से मेरी ओर देखा -'इस वक्त तुम जो कुछ मांगोगे वह मिल जाएगा ।' मैं हंसने लगा - मुझे नहीं मालूम था वह इन चीजों में विश्वास करती है...'जल्दी मांगो, वरना रेल गुजर जाएगी ।' एक क्षण के लिए हम दोनों चुप बैठे रहे और बस पुल के बाहर निकल आई । वह बारिश की शाम थी और एक अवसन्न सा उजाला उसके चेहरे पर गिर रहा था । 'बोलो, तुमने क्या मांगा था ?' उसने मुझे देखा इतनी उदास आंखों से... मैंने मुंह मोड़ लिया और बस की खिड़की से बाहर देखने लगा । उस शाम - मिंटो रोड ब्रिज के नीचे - जब उधर से रेल गुजर रही थी - उन दोनों ने एक ही इच्छा मांगी थी, एक दूसरे से अलग होने की... वे जितना ज्यादा एक दूसरे को चाहते थे, उतना ही ज्यादा एक दूसरे से छुटकारा पाने के लिए तड़पते थे - जैसे चाहना कोई पाप हो, कोई बुरा स्वप्न... ।'[1]

असल में निर्मल वर्मा के स्त्री-पुरुष किसी अज्ञात डर में जीते हैं, इसलिए उनके प्रेम का क्षण भी आतंक का क्षण होता है । जैसे प्रेम न करने का उन्हें आदेश मिला है और वे छुप छुपकर प्रेम कर रहे हैं । इस लिए उनमें अपराध-बोध भी है और निषेध की झनझनाहट भी ।

'दो गलियारों के बीच सड़कें आतीं - और उन्हें पार करते हुए वह

---

1. निर्मल वर्मा - कव्वे और कालापानी, पृ० 48

उसका हाथ पकड़ लेती - तब तक पकड़े रहती जब तक वे दोबारा अन्धेरे कारीडोर में नहीं चले जाते । पहली बार उन्होंने एक दूसरे को इसी तरह छुआ था - डर में - रास्ते पर, सड़क पार करते हुए । यह ठीक नहीं था । यह एक तरह का अपशकुन था जो छाया की तरह आखीर तक मंडराता रहता है । बाद में, जब हम अकेले सड़क पार करते हैं, तो खाली हाथ हवा में डोलता है - पुरानी छुआन की याद में - उस अपाहिज की तरह, जिसे मौके-बेमौके अपने कटे अंग की याद आ जाती है, यह एक छोटी-सी मृत्यु है । लोग बहुत धीरे धीरे मरते हैं ।'[1]

यह जीना भी अजीब है । एक रस्सी के दो छोर । एक तरफ जीना और दूसरी तरफ मरना । और इससे भी बड़ी विडम्बना यह है कि एक ही क्षण में जीना-मरना लगा है । 'एक चिथड़ा सुख' में डैरी-बिट्टी का ऐसा ही सम्बन्ध है । एक दूसरे के लिए अनिवार्य मगर यातना में लिथड़ा हुआ एक प्रेम -

'मुझे नहीं मालूम, तुम बात-बात पर लड़ने लगती हो ।'

'बात-बात पर नहीं - सिर्फ एक बात पर । तुम मुझसे तंग नहीं आ जाते ?'

'सुनो...' इस बार डैरी के स्वर में गुस्सा नहीं, सिर्फ सन्तप्त सी जिज्ञासा थी, 'तुम थियेटर छोड़ दोगी तो करोगी क्या ?'

बिट्टी हल्के-से हिली, जैसे कोई चीज़ देह में सिहरती हुई फुरफुरा जाती है, 'मुझे नहीं मालूम डैरी, मैं सिर्फ दिल्ली छोड़ना चाहती हूं ।' वह वाक्य कुछ देर अन्धेरे में जमा रहा ।

---

1. निर्मल वर्मा - कव्वे और कालापानी, पृ० 46

'मैं दिल्ली छोड़ना चाहती हूं ।' उसने दुबारा कहा, जैसे दूसरी बार की गरमाई पहली बार के नंगे, ठिठुरते वाक्य को अपने में ओढ़ रही हो ।

'क्या इलाहाबाद लौट जाओगी ?'

'नहीं... वहां नहीं ।'

'कहां जाओगी ?'

'मुझे नहीं मालूम... और कहीं गई तो तुम्हें नहीं बताऊंगी ।'

'क्यों, मुझ से छिप कर भागने में शर्म आएगी ?'

बिट्टी ने आंखें ऊपर उठायीं ।

'शर्म - तुमसे ?' वह हंसने लगी, 'नहीं, शर्म नहीं... मुझे तुमसे पूछने की ज़रूरत नहीं । तुमने सब कुछ देख लिया... बिहार, मरते हुए लोग, थियेटर... तुम सब कुछ जानते हो... तुम शायद नहीं जानते, मैं तुम से कितनी छोटी हूं... मैं खुद देखूंगी ।'

'देखोगी ?'

'कुछ भी... जो कुछ मेरे पल्ले पड़ेगा - सब को ?'

'तुम भिखारियों के साथ बैठोगी... मदर टेरेसा की तरह... तुम सोचती हो बिट्टी कि तुम...' ।

किन्तु इसके आगे वह कुछ नहीं सुन सका । गिलास गिरने की आवाज... और दूसरे क्षण उसे बिट्टी की लपट-सी फूत्कारती आवाज सुनाई दी, पागल सी बेतहाशा एक ही वाक्य को दुहराती हुई -

" get out of here, get out of my house, get out, get out, get out " – और वह झटाक से उठ बैठा - डैरी बार-बार अपने को बचाने के लिए उसका हाथ पकड़ने की कोशिश करते थे किन्तु हर बार बिट्टी हांपती हुई पीछे हट जाती थी जैसे कोई कोढ़ी उसे छू रहा हो --

"don't touch me, don't you ever dare to touch me ... "

और डैरी डर कर सचमुच पीछे हट जाते और उनके पीछे हटते ही बिट्टी दुबारा उन पर झपट पड़ती...

डैरी का रुंधा स्वर किसी भुतैली खोह से बाहर आ रहा था ,

"क्या कर रही हो, बिट्टी । सुनो, वह उठ जायेगा, जानती हो वह यहीं छत पर सो रहा है, बिट्टी, बिट्टी..." और तब बिट्टीसचमुच रुक गई, हांपती हुई सांसों के बीच चेतना की एक लकीर कौंध गई और तब डैरी ने काले अन्धड़ से बाहर निकल कर उसके झपटते, झिंझोरते हाथों को थाम लिया, उसे अपने पास खींच लिया, उसके फड़फड़ाते होठों पर अपना मुंह रख लिया, मानो ऐसा करने से ऊपर उफनते हुए शब्द भिंच जाएंगे, दब जाएंगे, किन्तु बिट्टी रुकी नहीं, जैसे रेस में दौड़ता हुआ घोड़ा दौड़ खत्म होने के बाद भी कुछ दूर भागता रहता है, वैसे ही बिट्टी के शब्द चुक जाने के बाद भी होठों के बाहर फिसलते जा रहे थे, कमजोर, शिथिल, बेमानी, लेकिन एक लीक में बन्धे हुए अपने बवण्डर में घूमते हुए, दुहराते

हुए -"don't touch me, don't you ever dare to touch me ... " ।

किन्तु, अब वह स्वयं डैरी को छू रही थी, अपनी तरफ समेट रही थी... उसके भिंचे होंठ खुल रहे थे, डैरी के होठों को अपने मुंह के अन्धेरे में घेरते हुए, उनकी सांस को अपनी सांस में समेटे हुए, एक चमकीली गरमाई के घेरे में, जहां न कोई उम्मीद होती है, न निराशा, न तसल्ली, न कोई भविष्य, न सुख, सिर्फ एक पाट खुल जाता है झाड़ियों में अटका हुआ नाला घिर फिर बहने लगता है, उस समय तक बहता रहता है, जब तक कोई दूसरा पत्थर, कोई झाड़-चट्टान, कोई सनेहर, बीच राह में औंधा-पड़ा कटे सत्य का कोई पेड़ उसे दुबारा नहीं रोक लेता ।[1]

यह टिप्पणी निर्मल वर्मा के कथा-साहित्य में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों पर ज्यों-की-त्यों लागू होती है ।

---

1. निर्मल वर्मा - एक चिथड़ा सुख, पृ० 110

चौथा अध्याय

निर्मल वर्मा के प्रेम के चित्रण में पाश्चात्य और भारतीय मूल्यों का द्वन्द्व

निर्मल वर्मा के प्रेम के चित्रण में पाश्चात्य और भारतीय मूल्यों का द्वन्द्व

`सुनो - उसने कहा, `क्या तुम मुझे सचमुच चाहते हो ?... क्या मैं तुम पर भरोसा कर सकती हूं ? ` वह इतना हताश, इतना कातर, इतना सम्पूर्ण प्रश्न था कि मैंने जल्दी से उसका हाथ अपने चेहरे से हटा दिया...जैसे अचानक किसी ने मुझे रास्ते में पकड़कर दिन-दहाड़े पूछा हो, फेटी, क्या तुम ईश्वर में विश्वास करते हो ?` एक पागल सा विचार आता है । अगर इसका कोई जवाब नहीं है तो तुम जी नहीं रहे हो - तुम बहुत साल पहले ही मर गए थे - जब तुम्हारा फोटो खींचा गया था - तुम्हारा फ्रेम कहीं और है - तुम्हें यह भी नहीं मालूम - तुमने उसे कहां गिरा दिया रास्ते में ।... और हम दोनों बहुत देर उन डरे हुए बच्चे की तरह बैठे रहे, जो रास्ता भूल कर फुटपाथ पर बैठ जाते हैं, प्रतीक्षा करते हैं कि शायद कोई हाथ पकड़ कर घर पहुंचा जाए ।`[1]

यह अंश निर्मल वर्मा की कहानी - जिन्दगी : यहां और वहां - का है । निर्मल वर्मा की कथा स्थितियों को ही नहीं, उनकी मूलभूत चिंताओं-अभिप्रायों की भी एक सुस्पष्ट झलक उनकी कहानी के इस मर्मस्थल में देखी जा सकती है । देखने की बात है कि एक सीधा सा प्रश्न नायक के लिए इस तरह जानलेवा क्यों बन जाता है ? क्यों इस प्रश्न की गूंज

---

1. निर्मल वर्मा - कव्वे और काला पानी

वृत्ताकार फैलती हुई पूरी कहानी को - बल्कि हर कहानी को - मानव-सम्बन्धों के पूरे संसार को - अपनी लपेट में ले लेती हुई हमें प्रतीत होने लगती है ? ज़रा इस प्रश्न के आगे तीनों विशेषणों की उत्तरोत्तर गहराती परिभाषा पर गौर करें - हताश कातर, सम्पूर्ण। क्या प्रेम में जिस प्रकार के विश्वास और आत्मदान की मांग निहित रहती है वह उतना ही आत्यंतिक है - मानवीय अस्तित्व के सन्दर्भ में जितना कि आत्मा (पुनर्जन्म) या ईश्वर में विश्वास करने न करने का प्रश्न ? क्या दोनों के बीच एक ऐसा सम्बन्ध है, जिसे अनदेखा करना संभव नहीं ?

`डरे हुए बच्चों ` की मूरत पर ध्यान दें और `घर` शब्द की व्यंजना पर भी । यह आकस्मिक नहीं कि `घर` और `बच्चे` निर्मल वर्मा के कथा-संसार में अक्सर दुहराए जाने वाले शब्द और अभिप्राय हैं । क्या वह अभिप्राय ? वे क्या सम्प्रेषित करते हैं ?

`घर कहीं न था... दुख था । बांझ दुख जिसका कोई फल नहीं, जो एक दूसरे से टकराकर खत्म हो जाता है - और हम उसे नहीं देखते जब तक आधा रिश्ता पानी में नहीं डूब जाता । तब हम घबड़ा जाते हैं, आतंकित से होकर पानी को उलीचते हैं - पर फायदा कुछ भी नहीं है - जितना दुख हम बाहर निकालते हैं - उससे कहीं ज़्यादा सुराख से भीतर चला आता है ।`

`जलमग्न रिश्ते की यह मूरत भी ` डरे हुए बच्चों की मूरत के साथ अपनी सांकेतिकता में ध्यान देने योग्य है । `बांझ दुख` की भी । अब ज़रा उस दुख को याद करें जिसके बारे में पिछली पीढ़ी में कहा गया कि

'दुख सब को मांजता है' (अज्ञेय) और दूसरों को भी मुक्त रखने की सीख देता है । उस मूल्यवान दुख से इस बांझ दुख की तुलना करें और अपने परिचित जीवन सन्दर्भों को लेकर इस उतार या अंतराल को वस्तुत: आंकने का प्रयास करें तो क्या हाथ लग सकता है ? क्या इस बांझ दुख की सत्ता मात्र स्नायविक या मनोवैज्ञानिक है ? अगर नहीं तो वह बांझ क्यों है ? उसे निवृत्तिपरक या प्रवृत्तिपरक मूल्य कहां गए ? यह अकारण नहीं कि इस कहानी की संरचना में दो चेतना-प्रवाह अलग-अलग भी दिखाए गए हैं - और साथ-साथ भी । इतनी मुक्त संरचना शायद ही किसी कहानी में मिले और इतनी जकड़न भरी यंत्रणा, इतनी बड़ी और बोझल गांठ भी । और इतना 'शून्य' अंत भी । फिर भी क्या कारण है कि इसकी छाप जो मन पर छुटती है, वह अवसन्नता या गाढ़े-काले निषाद की नहीं, एक अजीब तरह की मुक्ति के अहसास की भी छाप है ?'[1]

दूसरे कई चरित्रों की तरह इस कहानी का पुरुष पात्र भी अपने अतीत की कुंडली में जकड़ा दीखता है, पर उसकी यह अतीतग्रस्तता यहां सिर्फ एक स्नायु-ग्रंथि की तरह नहीं, एक मूल्य के रूप में भी बड़े प्रच्छन्न रूप से उभरती है । इस मूल्य की प्रतीति बड़े हल्के इशारे से होती है और वह क्या है, इसे जानने के लिए क्यों न रामचन्द्र शुक्ल के पास जाएं - 'वर्तमान हमें अंधा बनाए रखता है , अतीत बीच-बीच में हमारी आंखें खोलता रहता है । मैं तो समझता हूं कि जीवन का

---

1. कव्वे और काला पानी - रमेशचंद्र शाह, निर्मल वर्मा, सम्पादक : अशोक वाजपेयी

नित्य स्वरूप दिखानेवाला दर्पण मनुष्य के पीछे रहता है, आगे तो बराबर खिसकता हुआ परदा रहता है ।' (चिंतामणि - 3, पृ० 250)

यह अकारण नहीं है कि कहानी (जिंदगी : यहां और वहां) की लड़की पहले तो नायक की अतीतग्रस्तता की लगभग भर्त्सना करती है, उसके भयाक्रान्त दीखती है और बाद में ठीक इसके उलटे उससे यह `घर न छोड़ने` का आग्रह करती है । क्या इसलिए कि वह इस बीच चेतना-प्रवाह की तल तक जाकर खुद को जान चुकी है ? अपनी विच्छिन्नता को ?

`आदमी और लड़की` कहानी के इस अंश पर जरा ध्यान दें : 'ईश्वर के इर्द-गिर्द वैसा ही अंधेरा था, जैसा उसकी पत्नी के आसपास । और वह उसकी पत्नी के बारे में उतना ही कम जानती थी जितना आदमी उसके ईश्वर के बारे में... उन दोनों को अकेले छोड़ देना ही काफी था ।'[1]

कहानी का नेरेटर यह कहता तो है पर क्या वह उन्हें सचमुच अकेला छोड़ दे सकता है ? अगर हां तो निर्दोषिता और पाप के दो आत्यन्तिक प्रश्नों से कहानी इस तरह क्यों घिर जाती है ? यह कहानी भी तो अंतत: एक सम्बन्ध की ही कहानी है जिसमें एक विवाहित पुरुष विदेश-प्रवास के दौरान एक लड़की के सम्पर्क में आता है । विदेश भी वह ऐसा है जहां पर `धर्म और रंडीबाजी दोनों ही वर्जित हैं ।` आदमी की पत्नी भी वहीं - एक दूसरे शहर में रह रही है और वह बीच-बीच

---

1. निर्मल वर्मा - कव्वे और काला पानी

में उससे भी चला जाता है । आदमी प्रकटत: अपने दाम्पत्य से समंजस नहीं है । पर वह न तो अपनी पत्नी से अलग हो सकता है, न इस लड़की को सम्पूर्णत: अपना सकता है । लड़की अगर `इनोसेंस` का प्रतीक है तो आदमी `एक्सपीरियंस` का । लेकिन यह `इनोसेंस` भी तो अब अक्षत नहीं रहा । वह गुणात्मक परिवर्तन की दहलीज पर खड़ी है और यहीं से समस्या शुरू होती है । लड़की को उस खालीपन का अहसास ज़िन्दगी में पहली बार हुआ है जो `आदमी के न होने` से पैदा हुआ है । आदमी का गुस्सा, संताप और दिल की दलदल कहानी के चरम कोण पर इस वाक्य में प्रकट होती है : `सुनो, मैं मरना चाहता हूं ।`

वे दोनों एक बाहरी और भीतरी झूठ से घिरे हुए हैं । बाहर का झूठ मानव-निर्मित उस व्यवस्था का झूठ है जहां हम वही किताबें पढ़ते हैं जो हमारे लिए ठीक है ।` भीतर का झूठ प्रेम नामक कर्म या अकर्म की नैतिकता से जुड़ा हुआ है जो उतना ही अलंध्य जान पड़ता है जितना ईश्वर के इर्द-गिर्द फैला हुआ अंधेरा ।`जिन्दगी : यहां और वहां ` में अतीत और वर्तमान का, जीवितों और मृतकों का द्वन्द्व है, यहां एक सपाट खल्वाट वर्तमान में ठहरा हुआ दो सभ्यताओं, दो भाषाओं के बीच का बेमेल संयोग है ।[1]

निर्मल वर्मा भी दो बिन्दुओं से जुड़े हैं । बिन्दु नहीं - एक डोर - बीसवीं सदी में मनुष्य होने की विडम्बना - जिसका एक छोर पश्चिमी ज्ञान - मीमांसा से जड़ा है तो दूसरा एशिया से - भारत से । इसी लिए मलयज ने उनके बारे में लिखा है, `निर्मल वर्मा अपने देश वापस लौट कर भी वापस नहीं लौटे हैं । वे एक अन्तराल में हैं । इस अन्तराल के

---

1. कव्वे और काला पानी - रमेशचन्द्र शाह, निर्मल वर्मा - सम्पादक - अशोक वाजपेयी

एक छोर पर है अतीत, अनुभव के मिथ की तरह । दूसरे छोर पर है वर्तमान, अनुभव की वास्तविकता की तरह । अतीत एक जादू है जो स्मृति बन कर उन पर छाया हुआ है, वर्तमान उन्हें अपनी ओर खींचता है क्योंकि उसी में संभावना है । तनाव वे दोनों का महसूस करते हैं । वर्तमान के प्रति ललक उनमें है, पर आधे मन की या शायद आधे से भी कम मन की । वर्तमान का `खुलापन` उनकी दृष्टि में अटकता है कहीं भीतर बींधता भी है, पर इससे ज्यादा नहीं । स्मृति का पलड़ा ज्यादा भारी है, वे स्मृति के जिये गए सजीव रेशों से बुनी, अपनी दुनिया के पास से पासतर रहना चाहते हैं ।... यह कहीं न बंधने की अनिश्चितता और चलते रहने का टेम्प्रेरीपन हर कहीं है । जैसे दृश्य में, वैसे ही मानव सम्बन्धों में । `छुट्टियों` के बाद में प्रेम-प्यार के नाते छुट्टियों की समाप्ति के साथ - बल्कि एक स्टेशन और दूसरे स्टेशन के बीच ही - बदल जाते हैं, `वीक एंड` की प्रेमिका अपने विवाहित प्रेमी से केवल वीकएंड के भागते अन्तराल ही में जुड़ पाती है, किसी स्थायित्वपूर्ण रिश्ते की आत्मनिर्भर एकाग्रता में नहीं । ये सब न एक दूसरे से जुड़ पाते हैं, न एक दूसरे से कट पाते हैं ।[1] ये एक अजीब एम्बीग्वीटी में जीते हैं ।

`रात का रिपोर्टर` में रिशी के प्रति उमा में पर्याप्त अविश्वास है । यह अविश्वास शायद इसलिए पैदा हुआ है क्योंकि उमा रिशी के साहचर्य-सुख से तो वंचित है ही, उसे यह भी सन्देह है कि रिशी अपने विषय में उसे कुछ नहीं बताता है और बताता है तो सही-सही नहीं बताता । इसलिए उमा रिशी के बस्तर जाने की बात का विश्वास नहीं करती । राय साहब के दफ्तर में जाकर यह भी पूछती है कि रिशी

---

1. मलयज - संवाद और अकालाप

रिशी सचमुच बस्तर गया है या राय साहब के दफ्तर में छिपकर बैठा है । अस्पताल में भी उमा रिशी की मां से यही सवाल पूछती है । इतना होने पर भी उमा का सौभाग्य नहीं हुआ है । उसे अभी भी यह आशा है कि रिशी उसका होकर रहेगा । तभी तो रिशी के बस्तर जाने के दो दिन पहले उसने सूटकेस से सारे सामान निकाल कर फर्श पर बिखेर दिये थे और सूटकेस छुपा दिया था ।

पति द्वारा अपने तिरस्कार की भावना ही शायद उमा के पागलपन का कारण है । और रिशी को यह अनुभव होता है कि "नहीं यह दुख है, पागलपन नहीं, दुख है जो चारों तरफ भटकता रहता है ।"[1] रिशी उमा की मानसिक बीमारी की व्याख्या यों करता है - हम जिसे मानसिक बीमारी कहते हैं, वह ऐसा कुछ नहीं, सिर्फ अधैर्य है, बीच रास्ते में सत्य को पाने का प्रलोभन, जबकि उसके लिए हमारी आत्मा तैयार नहीं है... । परन्तु यह कौन सा सत्य है जिसको पाने का अधैर्य उमा पर हावी है ? निश्चय ही उमा की उलझनों का, उसकी मानसिक व्यथा का स्रोत तो पति-पत्नी सम्बन्ध है । इस सम्बन्ध के सत्य की क्या प्रकृति है, यही तो उमा निश्चित नहीं कर पा रही है । और इसी कारण से उसका मानसिक सन्तुलन भी खो गया है । परन्तु रिशी यह कहकर कि उमा के सत्य को पाने का अधैर्य, जबकि उसकी उमा की - आत्मा इसके लिए तैयार नहीं है, इसका कारण है, अपने दायित्व से बरी होना चाहता है, अपने कर्म के परिणाम से असम्पृक्त होना चाहता है । अपने दायित्व से, अपने कर्म के परिणाम से छुटकारा पाने की रिशी की प्रवृत्ति

---

1. निर्मल वर्मा - रात का रिपोर्टर

तो परिलक्षित होती ही है । इसके साथ ही वह आकर्षण-विकर्षण की दुविधाजनक स्थिति में भी फंसा रहता है । उमा के अस्पताल जाने पर रिशी यह कामना करता है कि उमा वहां से लौट कर न आए । और फिर अपने संकट के संकेत से उसके मन में यह आवेश भी आता है कि वह अस्पताल जाकर, उमा का हाथ पकड़ कर उससे कहे -'सुनो, इस से पहले मुझे कुछ हो, मैं तुम से कुछ कहने आया था । (पृष्ठ 24) । रिशी को अपनी मां से जब यह ज्ञात हुआ कि उमा उससे मुक्ति चाहती है तो उसकी खुशी की सीमा न रही । वह अपनी प्रेमिका - बिन्दु - से यह कहने को उतावला हो जाता है कि उमा ने उसे मुक्त कर दिया है :' सुनो अब हमारे बीच कोई पाप नहीं है, अब हम जहां चाहें ... (पृष्ठ 100) । परन्तु दूसरी ओर डाक्टर के मना करने पर भी जब वह अस्पताल में उमा के दरवाज़े तक चला गया था तो उमा का प्रश्न कि 'रिशी, तुम हो ?' सुन कर ठिठक गया था और रिशी ने यह निश्चय किया, '... अगर वह मुझे एक बार फिर बुलाएगी, तो मैं डाक्टर की परवाह नहीं करूंगा, मां को अलग ठेल कर उसके पास चला जाऊंगा, उसके चेहरे पर अपना चेहरा रख दूंगा, उससे कहूंगा - 'उमा, यह मैं हूं देखो, देखो, देखो... ।' एक ओर तो हालबाख के यह पूछने पर कि रिशी उमा से अब भी प्यार करता है, रिशी कहता है : 'नहीं, पहले नहीं, सिर्फ बिन्दु से मिलने के बाद । जब मैंने बिन्दु के साथ अपना सुख नहीं जाना था, मुझे पता नहीं था कि मेरी पत्नी का दुख कहां से आता है (पृष्ठ 93) । परन्तु, दूसरी ओर, यह पूछे जाने पर कि वह इस वक्त यहां किसे देखना चाहेगा, तो उसने झिझक के साथ उत्तर दिया, बिन्दु ।

अनुराग और विराग, आकर्षण और विकर्षण, दया और बेरुखी के बीच झूलता हुआ पति रिशी । और वह प्रेमी की भूमिका

में क्या कोई दूसरा रूप प्रस्तुत करता है ? बिन्दु और रिशी का प्रेम तीन साल पुराना है, परन्तु ऐसा लगता है कि रिशी का चाहते हुए भी बिन्दु के साथ आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करने में असमर्थ है । बिन्दु की यह इच्छा कि वे दोनों खुले रूप से नहीं घूमने जा सकें, रिशी की दृष्टि में मात्र सम्भावनाहीन इच्छा है । बिन्दु को लगता है कि उसके और रिशी के बीच एक फासला है, जो दोनों की दुनिया को छूने तो देता है, परन्तु बहुत नजदीक नहीं आने देता, आत्मीयता के प्रगाढ़ बन्धन की अनुमति नहीं देता । बिन्दु के लिए रिशी बहुत हद तक अजनबी ही बना हुआ है । बिन्दु को हमेशा अनुभव होता है कि रिशी के साथ होने पर भी वह रिशी से कुछ कह नहीं पाती (पृष्ठ 56) । उसे यह भी शिकायत है कि रिशी उसे कुछ बताता नहीं, या बताता है तो टुकड़ों में । रिशी के जीवन में जो समस्याएं हैं, उसके घरेलू जीवन की जो जिम्मेदारियां हैं, उनमें वह बिन्दु को सहभागी नहीं बनाना चाहता, ऐसी बिन्दु की धारणा है । उसे ऐसा भी लगता है कि रिशी को उसकी कोई ज़रूरत नहीं - 'मैं अस्पताल नहीं आ सकती, तुम्हारी पत्नी को देखने के लिए ... न मैं तुम्हारे घर आ सकती थी, जब तुम बस्तर में थे और तुम्हारी मां घर में अकेली रहती थी : मैं तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं हूं ।' (पृष्ठ 55-56) ।

यह आश्चर्य की बात नहीं कि बिन्दु के लिए रिशी कुछ अजनबी जैसा ही है । सान्निध्य प्राप्त करने, यौन सम्बन्ध रखने के बाद भी रिशी बिन्दु को आत्मीय नहीं बना पाया है, ऐसा आत्मीय जिसके सामनेव्यक्ति अपने अस्तित्व के सारे दरवाज़े खोलकर अन्दर झांकने और आने की अनुमति दे सके । शरीर तो निकट आ जाते हैं, परन्तु मन और आत्मा अपनी अलग-अलग धुरियों पर घूमते रहते हैं, एक दूसरे से बेलौस,

बेख़बर । अलवर जाते समय एक छोटे से स्टेशन पर जब रिशी चाय लेने के लिए उतरा तो बिन्दु को कुछ ऐसा ही अनुभव हुआ था जैसा कि बिन्दु ने रिशी को बाद में बताया था --

'उस रोज़ जब तुम स्टेशन पर चाय लेने गए थे, मैं तुम्हें रेल की खिड़की से देख रही थी । मैं यह सोचने का बहाना करने लगी कि यह आदमी जो प्लेटफार्म पर खड़ा है, पता नहीं कौन है । मुझे लगा, मैं किसी अजनबी को देख रही हूं । और तब मुझे इतना खौफ़ लगा और इतनी खुशी हुई कि मैं तुम्हें जानती हूं और जब तुम चाय लेकर लौटे तो मुझे यह चमत्कार लगा कि जिसे मैंने अजनबी माना था वह और कोई नहीं, तुम थे ।'[1]

इस अजनबीपन की अनुभूति से बिन्दु परेशान है, आक्रांत है । अनिश्चयता की स्थिति से परेशान है । और जब रिशी प्रश्न करता है कि क्या बिन्दु सचमुच चाहती है कि रिशी वर्तमान संकट से उबरने के लिए दिल्ली बाहर चला जाए, तो बिन्दु उबल पड़ती है और बहुत दिनों से दमित वेदना सारे बन्धनों को तोड़ कर उफन पड़ती है -'तुम अब मुझसे पूछते हो ? ... पहले जब बाहर जाते थे तो क्या मुझसे पूछते थे कि मैं पीछे कैसे रहती हूं ?'[2]

इस प्रश्न में समाया हुआ बिन्दु का दुसह अनुभव मुखरित हो उठता है :

---

1. निर्मल वर्मा - रात का रिपोर्टर
2. वही

'... उसके कहीं बाहर जाते ही वे लम्बे, सूने दिन याद आते थे, जब वह अकेली दिल्ली की सड़कों पर घूमती थी, हर दिन उसके पत्रों की राह देखती थी । जो लम्बे फासलों को पार करके आते थे... तब उन्हें नहीं मालूम था कि बार-बार का जाना एक तरह से अन्तिम बार जाने का रास्ता खोल देता है ।'[1]

बिन्दु अपने को जिस स्थिति में पाती है, उसमें कोई भी पागल हो जाने के भय से आक्रान्त हो जा सकता है । अत: यह आश्चर्यजनक नहीं कि बिन्दु रिशी को बताए कि वह बाहर की दुनिया में वहीं पहुंच रही है जहां उमा पहुंच गई थी । लेकिन रिशी अपने ही अनिश्चय की कारा में बन्द यह नहीं तय कर पाताहै कि वह बिन्दु से अपना सम्बन्ध और प्रगाढ़ करे या नहीं । वह बिन्दु से स्थायी सम्बन्ध तो स्थापित करना चाहता है परन्तु अपनी पारिवारिक स्थिति के कारण वैसा कर नहीं पाता है । वह बिन्दु को आत्मीयता के, प्रेम के बन्धन में जकड़ लेना चाहता है परन्तु बिन्दु को अपने दुख में सम्मिलित भी नहीं करता । वह अपने अन्दर के डर से बिन्दु को अछूता रखना चाहता है -

'... उसका डर सिर्फ उसके भीतर है, एक छूत की बीमारी-सा, जिसे उसने अभी तक बिन्दु को नहीं छूने दिया : वह अगल फैले नहीं, तो वह उसे अपने से बचा सकता है, डर सिर्फ दूसरे को छू कर ही आतंक बनता है... कायर आदमी की जीत सिर्फ इसमें है, अगर वह दूसरों को अपने डर से सुरक्षित रख सके... और वह सिर्फ झूठा और धोखे से सम्भव हो सकती है ।'[2]

---

1. निर्मल वर्मा - रात का रिपोर्टर
2. वही

लेकिन क्या यह रिशी की चालाकी नहीं है ? अपने प्रियजनों को अपनी मुसीबतों से बचा कर रखना शायद स्वाभाविक है । इसीलिए वह शायद बिन्दु को अपने और अपने परिवार के दुखड़ों से बचा कर अलग रखना चाहता है । वह बिन्दु से सिर्फ प्रेम का सम्बन्ध रखना चाहता है । किन्तु बिन्दु को यह स्वीकार्य नहीं है । बिन्दु प्रेम और दर्द दोनों का रिश्ता चाहती है जो रिशी को स्वीकार्य नहीं है । ऐसा लगता है कि दोनों एक दूसरे से प्रेम तो करते हैं लेकिन एकात्म नहीं हो पाते । और इसमें बाधा रिशी की ओर से ही है । वह अपने व्यक्तित्व के सार बीज-कोष को बाहरी प्रभावों से बचा कर रखना चाहता है । आत्मीयता उसके व्यक्तित्व के सार भाग के ऊपर आक्रमण जैसा लगता है । इसलिए वह प्रेम का रिश्ता तो स्वीकार करता है, परन्तु दर्द का नहीं । क्योंकि दर्द का रिश्ता फासलों को समाप्त करने पर ही सार्थक होता है । मगर फासला तो रिशी का कवच है । इस सम्बन्ध में रिशी को दलाई लामा का यह प्रश्न कि तिब्बती शरणार्थियों की याचना दूर करने का कोई रास्ता नहीं, महत्वपूर्ण है । दलाई लामा का उत्तर था : "सच्चा प्रेम उस याचना से उत्पन्न होता है जिसे इस धरती पर लाखों लोग भोगते हैं ।"

अर्थात् दूसरों की यातना में सहानुभूति और सहभागिता की भावना के उद्रेक होने से ही सच्चा प्रेम पनपता है । परन्तु रिशी इस के लिए तैयार नहीं । तो क्या रिशी का यह आग्रह कि बिन्दु उसके दुखड़ों के पचड़े में न पड़े, उसके अपने ही व्यक्तित्व को खास तरह से सुरक्षित रखने की बुद्धिसंगत व्याख्या नहीं है ? इन सन्दर्भों और प्रसंगों से यह स्पष्ट है कि रिशी का मानसिक संकट, उसका आन्तरिक विभाजन पहले से ही चला आ रहा है ।[1]

---

1. रामाश्रय राय - निर्मल वर्मा - सम्पादक : अशोक वाजपेयी

ठीक इसी तरह `एक चिथड़ा सुख` में पीड़ा और वेदना की एक हवा लगातार चलती है - सूनेपन की, जो पात्रों और चीजों को धीरे-धीरे, लेकिन उनके भीतर तक पहुंच कर दिखाती रहती है । दुख के मन को पहचानने और परखने का संघर्ष `एक चिथड़ा सुख` का उद्देश्य और उपलब्धि है । इस उपन्यास में दो प्रेम कहानियां हैं - एक निक्की भाई और इरा के बीच और दूसरी डैरी और बिट्टी के बीच । यद्यपि इरा जन्मना भारतीय है पर उसने ब्रिटिश नागरिकता हासिल कर ली है और निक्की भाई के साथ इंग्लैंड में विकसित हुए अपने प्रेम को पूरी तरह से पाने के लिए भारत आई हुई है । निक्की भाई विवाहित और पिता बन चुके हैं । उनकी विडम्बना यह है कि न तो वह अपनी पत्नी को खदेड़ पाते हैं और न इरा को अपना पाते हैं । बीच में झूलते हुए एक दिन आत्महत्या कर लेते हैं ।

डैरी उच्च वर्ग से आता है, लेकिन अपनी सुविधाओं को त्याग कर बिहार में चल रहे उग्र क्रांतिकारियों का साथ देने घर छोड़ देता है । लेकिन वहां वह रह नहीं पाता । लौट कर दिल्ली में नाटक करता है, मैज-संगीत सुनता है, बीयर पीता है और बिट्टी इरा से प्रेम करता है । और बिट्टी, जो अपने घर को त्याग कर दिल्ली आई है - अर्थ खोजने, लेकिन जिसे कोई अर्थ नहीं मिलता । एक तरह से ये सभी अभिशप्त लोग हैं ।

`निक्की भाई, तुमने कभी सोचा है ?`

`किसके बारे में ?`

`तुम इंग्लैंड से क्यों लौट आए ? तुम हम लोगों को नहीं देखते जो यहां रहते हैं ?`

नित्ती भाई कुछ देर तक चुपचाप अपने गलास को देखते रहे, फिर एक लम्बी सांस ली, जिसमें पता नहीं, कितना बोझ लदा था ।

'बिट्टी, तुम सब कुछ छोड़ कर यहां पड़ी हो । किसके लिए ? हिन्दुस्तान में कितने लोग ऐसा करते हैं ?'

बिट्टी की आंखें खाली हवा पर ठिठक गयीं, फिर बहुत हल्के स्वर में बोली, 'हिन्दुस्तान में कोई कुछ नहीं छोड़ता, मैंने कुछ नहीं छोड़ा, पहले मैं बाबू के घर रहती थी, अब यहां बरसाती में... और डैरी ? वह अपने पिता के बंगले में रहते हैं, हम वही किताबें पढ़ते हैं, जो दूसरे लोग, वही बातें करते हैं... मैंने जब इलाहाबाद छोड़ा था, तो सोचा था कि अब मैं छोटी छोटी चीज़ों के घेरे से बाहर आ जाऊंगी...' वह धीरे से हंस पड़ी, 'अब मैं बड़ी चीजों के बीच में हूं... लेकिन मैं उतनी ही छोटी हूं, जितनी पहले... मेरे भीतर कुछ भी नहीं बदला है ।'[1]

क्या जगह बदलने से मनुष्य की नियति बदल जाती है ? बदल सकती है ? नहीं, और ऐसा इसलिए कि चेतना में भटकता हुआ संसार, जगह के बदलने से छूट नहीं जाता है । वह हमेशा साथ रहता है और जैसे ही तुम्हें लगता है कि तुम उन चीजों से मुक्त हो - हो रहे हो - वैसे ही वह तुम्हारी चेतना के दरवाजे को धड़धड़ाने लगता है ।

नित्ती भाई, इरा, डैरी और बिट्टी के संकट वस्तुगत नहीं, आत्मगत हैं । लगता है कि चुपके से, बिना किसी आवाज के, आधुनिक सभ्यता ने तीसरा विश्व युद्ध झेला है । उससे पैदा हुए अंधकार में हम

---

1. निर्मल वर्मा - एक चिथड़ा सुख

पात्रों में अपनी आत्म-छवियां खो दी हैं । हम जानते हैं कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पश्चिम में ऐसी ही निरीह और कातर पुकार साहित्य में सुनी गई थी । काफ्का, वर्जीनिया वुल्फ, कामू आदि के लेखन में पश्चिम के ऐसे ही मनुष्य को कातरता सुनाई पड़ती है । लेकिन निर्मल वर्मा के अनुसार -

'मनुष्य का यह लावारिस अलगाव और अधूरापन कोई आधुनिक पश्चिमी-बोध की देन नहीं है - वह मनुष्य के मनुष्यत्व के बीच एक कीड़े की तरह विद्यमान है । धरती पर उसके महज़ `होने` के बोध में निहित है । उसकी समूची मिथक संरचना धर्म-विज्ञान, ईश्वर-कल्पना, और हमारे समय में सम्पूर्ण क्रांति का स्वप्न इसी अभिशप्त अनाथावस्था से छुटकारा पाने का गौरवपूर्ण, ट्रेजिक और बीहड़ प्रयास है ।'[1]

कोई सम्बन्ध पूर्ण नहीं है क्योंकि कोई मनुष्य अपने में पूर्ण नहीं है । अधूरापन एक प्रकार की असम्प्रेषणीयता है, क्योंकि कोई अपने को पूरी तरह सम्प्रेषणीय नहीं पाता - कुछ है जो बार-बार छूट जाता है - दूसरों तक पहुंचने से ही नहीं, बल्कि खुद अपनी गिरफ्त में आने से भी । अकेलापन उस अधूरेपन का ही अहसास है । निर्मल वर्मा की कहानियां पढ़ चुकने पर यदि चरित्र क्रम से याद नहीं आते तो इसका एक कारण यह भी है कि ये सभी चरित्र अपनी नियति में एक जैसे हैं - एक जैसे अधूरे और साथ होते हुए भी अकेले । परिन्दे की लतिका, ह्यूबर्ट और डाक्टर मुखर्जी हों या `पिछली गर्मियों में` के मां-बाबू, नीता और वह `दूसरी दुनिया` की गेता, मिसेज पार्कर और मैं - सभी अपनी-अपनी तरह

---

1. निर्मल वर्मा - कला का जोखिम

से अकेले हैं । 'अन्तर' कहानी की लड़की गर्भपात के बाद भी अपने प्रेमी से प्रेम कर चुकने के बाद उसके चले जाने पर वे सब चीज़ें तौलिये में लपेट कर बाहर फेंक देती है जो वह उसके लिए लाया था । 'आदमी और लड़की' में एक तरफ आदमी है जो अपनी पत्नी को दूसरे शहर में छोड़ कर अपने से कम उम्र की लड़की से प्रेम करता है, पर कई बार अनावश्यक कटाक्ष करता है :

'कब जा रहे हो ?' लड़की ने दुबारा पूछा, किन्तु अब उसके स्वर में लापरवाही के बदले एक अजीब सी कोमलता भर आयी थी ।

'मैं पत्र की राह देखूंगा ।' उसने कहा ।

'लेकिन अगर वह सचमुच बीमार है ?' लड़की ने कहा ।

'सचमुच मतलब ? तुम सोचती हो यह बहाना है ?'

'मैंने यह नहीं कहा,' लड़की ने कहा, 'अगर वह बीमार है तो तुम्हें जाना चाहिए ।'

'तुम्हें बहुत जल्दी है ?'

'जल्दी कैसी ?'

'मेरे जाने की ।'

लड़की ने विस्मय से उसकी ओर देखा ।

'मैं समझी नहीं ।' उसने कहा ।

'मुझसे ज्यादा तुम उसकी फिक्र करती हो ।'

यह कटाक्ष था । वह कटाक्ष से भी आगे जाना चाहता था, जहां

क्रूरता शुरू होती है, किन्तु वहां सिर्फ कमीनापन था और वह रुक गया । आगे कुछ भी न था - सिर्फ एक गंदली सी थकान और जलन थी ।'[1]

और दूसरी ओर लड़की है जिसे कहीं सम्बन्धों के पाप का अहसास है, फिर भी जो आदमी के साथ को नहीं छोड़ सकती, जैसे यह कोई आध्यात्मिक ज़रूरत हो और आदमी भी उससे प्रेम करते हुए भी जैसे एक अपराध-बोध से ग्रस्त है :

उसने बेग उठाया और लड़की के पास चला आया । उसके छोटे-से सिर पर अपना मुंह रख दिया । वह उससे बहुत छोटी थी और एक स्कूली लड़की की तरह सुनसान खड़ी थी ; और जब उसे लगा जैसे उसकी उम्र के चालीस साल एक गंदले नाले की तरह दुकान के बीचोंबीच बह रहे हैं और बीच का पानी इतना उथला है कि वह उसमें डूब कर मर भी नहीं सकता - केवल लड़की को उसमें घसीट कर गंदला कर सकता है ।[2]

लेकिन उसके बावजूद दोनों में प्रेम है, जिसे कहा नहीं जा सकता --

'सुनो', आदमी ने बहुत धीरे से कहा, 'मैं मरना चाहता हूं ।'

'क्या ?' लड़की ने सिर उठाया, उसकी ओर देखा । आदमी कभी-कभी उससे अपनी भाषा में बोलने लगता था जिसे वह बिलुल नहीं

---

1. निर्मल वर्मा - कव्वे और काला पानी
2. वही

समझ पाती थी ।

'तुमने कुछ कहा ?'

वह धीरे-धीरे उसके सिर को सहलाने लगा ; वह मां से बच्ची बन गयी थी और आदमी उससे ऐसा सच बोल सकता था जिसका अनुवाद वह कभी न कर सकेगी ।[1]

निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में यह अकेली घटना नहीं है, जब एक व्यक्ति मरने की इच्छा मांगता है :

'कल तुम साली होगे ?'

'कल ?' मैंने अन्धेरे में देखा... एक क्षण के लिए विश्वास नहीं हो सका कि हम दोनों के बीच पूरी रात पड़ी है - आज के दिन को अलग करती हुई ...

'तुम होटल में ही रहोगी ?' मैंने उसकी ओर देखा ।

'और कहां जाऊंगी ?' उसने मुस्कुराते हुए कहा, 'कल हम सारा शहर घूमेंगे ।'

लेकिन मैं कल के बारे में नहीं सोच रहा था । उसका जाना मुझको असम्भव-सा लग रहा था ।

'मैं एक छोटी-सी 'बार' जानता हूं । वह ज्यादा दूर नहीं है... हम वहां जा सकते हैं ।'

---

1. निर्मल वर्मा - कव्वे और काला पानी, पृ० 100

'उसके बाद ?' उसने मेरी ओर देखा । वह बहुत गम्भीर दिख रही थी ।

'उसकेबाद... हम 'बुदापेस्ट' जायेंगे - वहां वे तोकई देते हैं और हंगेरियन पापरिका ।' मैंने कहा ।

'उसके बाद ?'

'उसके बाद... जैसा तुम चाहो ।'

'उसके बाद ?' उसने हंसते हुए मेरा कोट पकड़ लिया, 'आई क्लि डाई ।'[1]

एक और कहानी - दहलीज - में एक लड़की कहती है -'देखती नहीं, मैं मर गई हूं ।'

यह मरने की इच्छा क्या है ? क्या ये वाकई मरना चाहते हैं ? निर्मल जी के कथा-संसार में मरने की इच्छा दो रूपों में सामने आती है । एक वह क्षण है जब कोई विशिष्ट पात्र प्रेम के ऐसे गहन अनुभव में डूब जाता है जहां कुछ कहना संभव नहीं है - वहां मृत्यु की आकांक्षा वस्तुत: निर्विकल्प तृप्ति की अभिव्यक्ति है - ऐसी तृप्ति जो इस देह-मन से संभाली नहीं जा सकती । वह उसे तोड़ कर निकल जाना चाहती है । दूसरा वह, जब कोई चरित्र अकिंचनता से भर उठता है । वहां दुख का कोई शोर नहीं होता, उमड़ती हुई पीड़ा उठती है और आदमी को जज़्ब कर लेती है ।

'मैंने उसे अपना ऊनी मफलर दे दिया ।

---

1. निर्मल वर्मा - वे दिन, पृ० 69

'मुझे इसकी ज़रूरत नहीं है ।' उसने कहा ।

'बाहर बर्फ़ गिर रही है ।' मैंने कहा ।

'इसे वापस कैसे करूंगी ?' उसने मेरी ओर देखा ।

'मैं तुम्हारे साथ होटल तक आ रहा हूं ।' मैंने कहा ।

'मैं चली जाऊंगी... होटल दूर नहीं है ।' उसने कहा ।

'तुम्हें बुरा लगेगा - अगर मैं तुम्हारे साथ चला आऊं ?'

मैं अपने कोट के बटन बन्द करने लगा । सहसा मेरे हाथ ठिठक गए । वह निस्तब्ध खड़ी थी । दोनों आंखें आंसुओं में चमक रही थीं।

'क्या बात है, रायना ?' पास आकर मैंने उसका कन्धा पकड़ लिया । कमरे के बीच हम दोनों एक-दूसरे को पकड़े हुए निश्चल खड़े रहे । उस क्षण हम कुछ नहीं कह सके । देह का शायद अपना एक मौन होता है... हम जीवित रहते हैं, लेकिन उसका हर स्नायु मरने लगता है... शिराओं में खून बहता रहता है - तप्त, गर्म सनसनाती लू की तरह ... हर चीज़ पूर्ववत् रहती है - धमनियों का स्पन्दन, सांस का आना - जाना, रक्त की गति... सिर्फ उन सब को जोड़नेवाला धागा टूट जाता है.. वह कांपती रहती है हवा में एक फूले, निर्जीव झोले की तरह...।'[1]

यह एक और तरह की मृत्यु है ।

निर्मल के पात्र 'कनफेशनल' हैं । जैसे उन्होंने कोई अपराध किया है, और उस अपराध को सिर्फ वे ही जानते हैं । यह निहायत पश्चिमी

---

1. निर्मल वर्मा - वे दिन, पृ0 169

तत्व है उनके कथा साहित्य में । हम जानते हैं कि पश्चिम का सम्पूर्ण सौन्दर्य-शास्त्र ही क्नफेशनल है - जैसा कि फूको के `हिस्ट्री आफ सेक्सुएलिटी` में लिसा की है । क्राइस्ट की हत्या के अपराध-बोध से वह समाज निकल नहीं पाया है । इतना ही नहीं, पहले और दूसरे विश्व युद्ध ने उसे बुरी तरह से झकझोरा है, उसकी चेतना को अपराध-बोध से भरा है । इन चीजों का सीधा प्रभाव निर्मल जी के कथा दर्शन पर पड़ा है । अपराध और युद्ध की विभीषिका ने उसे (पश्चिमी समाज को) प्रवहमान समय से काट कर क्षणों में विभाजित कर दिया है, इस लिए वहां प्रेम-सम्बन्ध के नैरन्तर्य की आकांक्षा की जगह, क्षण में ही अजर-अमर हो जाने, सत्य को जी लेने का जीवन दर्शन विकसित हुआ है ।`वे दिन`में निर्मल वर्मा कहते हैं --

`तीन दिन, तीन वर्ष... समय कुछ भी मानी नहीं रखता - अगर हम एक सुलगते क्षण में अन्धेरे के बीच उस `ताप` को पकड़ सके... यह जानते हुए भी कि वह जीवित नहीं रहेगा और यह जानते हुए भी कि उसके बुझने के बाद हम फिर दुबारा अपने-अपने अन्धेरे में ठिठुरने लगेंगे ।`[1]

---

1. निर्मल वर्मा - वे दिन, पृ० 155

पांचवां अध्याय

निर्मल वर्मा का कथा साहित्य : मनुष्य का अकेलापन और प्रेम की विडम्बना

निर्मल वर्मा का कथा साहित्य : मनुष्य का अकेलापन और प्रेम की विडम्बना

निर्मल वर्मा ने अपनी किताब `दूसरी दुनिया` में लिखा है, `वे लोग जो कलाकार से प्रतिबद्धता की मांग करते हैं - अक्सर यह आशा करते हैं कि वह अपने को `सामूहिक अनुभव` के साथ जोड़ेगा - जबकि यह असम्भव है, क्योंकि हर लेखक अपने अनुभव में नितान्त अकेला है ।`

अनुभव में अकेला होना और उन अनुभवों से अकेलेपन का दर्शन पैदा करना दो अलग-अलग चीजें हैं । यह आवश्यक नहीं कि अकेलेपन से पैदा हुआ रचना-दर्शन अकेलेपन के सत्य (?) को ही पैदा करे । बल्कि कई बार अपनी इसी सीमा से त्रस्त होकर वह अकेलेपन की बेड़ियों से मुक्त हो जाना चाहता है । लेकिन निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में मनुष्य का जो अकेलापन एक मरुथल की तरह सर्वत्र व्याप्त है, वह पाठक या आलोचक से ज़्यादा गहरी चिंतन-दृष्टि की मांग करता है ।

असल में निर्मल वर्मा जी यह मानते हैं कि मनुष्य का अकेलापन उसका चुनाव नहीं, उसकी मजबूरी है । उन्होंने अपनी डायरी में लिखा है - मैं हमेशा अकेलेपन पर रुदन करता रहा हूं ।[1] अज्ञेय ने लिखा है कि मैं अकेलापन चुनता नहीं, उसे स्वीकार करता हूं । इसका अर्थ यह है कि आधुनिक मनुष्य ने ऐसी सभ्यता विकसित की है, ऐसा समाज बनाया है, जिसमें अनिवार्य रूप से अकेलापन सबसे महत्वपूर्ण तत्व बनकर सामने आया है ।

---

1. निर्मल वर्मा - धुंध से उठती धुन

निर्मल जी इस अकेलेपन की जड़ औद्योगिक सभ्यता के केन्द्र में देखते हैं । उनके अनुसार मनुष्य के दो पतन हुए हैं । पहला पतन तब हुआ जब वह प्रकृति से अलग हो गया - समाज बनाकर रहने लगा और उसका दूसरा पतन तब हुआ जब वह समाज से भी कट गया । अब स्वतंत्र हो गया, लेकिन इस स्वतंत्रता की कीमत, उसने अपने एकान्त के विलाप से चुकायी । उन्होंने लिखा है -"पशुओं को प्रकृति के निकट रहने से जो ग्रेस उपलब्ध होता है और देवदूतों को ईश्वर के निकट रहने से जो आभा मिलती है - मनुष्य ही एक ऐसा अभागा प्राणी है, जो इन दोनों से अपने अपने एकान्त में ठिठुरता रहता है ।"[1]

निर्मल वर्मा मानते हैं कि मनुष्य का यह अकेलापन उसकी कोई ऐसी अवस्था नहीं है, जिससे उसे मुक्ति मिल जाएगी, यह उसकी नियति है और इसमें भटकते रहना ही उसका जीवन है । आखिर मनुष्य की सार्थकता क्या है ? निर्मल जी कहते हैं - इसी पीड़ा में विद्युत कण की उद्भ्रान्त खोज । शायद इसे ही अज्ञेय ने अपनी कविता में कहा है - दुख सब को मांजता है... जिसे वह मांजता है, उसे यह सीख देता है कि औरों को अपने से मुक्त रखे ।[2]

इसीलिए उन्होंने कैथरीन मैन्सफील्ड को कोट करते हुए लिखा है -- मेरे लिए लिखना इस पीड़ा को `अपना हिस्सा` बनाने की कोशिश रही है - इससे एक अजीब कृतज्ञता का अहसास होता है । यदि कोई अचानक मुझसे पूछ बैठे कि इन वर्षों में मैंने लिखने से क्या पाया है तो मेरा उत्तर बिलकुल असंदिग्ध होगा - उसके द्वारा मैंने एक ऋण चुकाया है, इस धरती पर जन्म लेने का चमत्कार, जो केवल एक दूसरे चमत्कार को जन्म देने से ही चुकाया जा सकता है ।

---

1. निर्मल वर्मा - शब्द और स्मृति
2. अज्ञेय - नदी के द्वीप

निर्मल वर्मा अक्सर मुझे आज के लेखन की गरिमा और उसका संकट दोनों की ही तस्वीर नज़र आते हैं । वह गरिमा नहीं, जो बाहर स्टेटस सी दिखती है, बल्कि वह जो लेखन और उसकी अर्थवत्ता के प्रति अटूट आस्था से स्वयं को आलोकित करती है । निर्मल जी की यह अवस्था उनके अकेलेपन की वजह से और भी गाढ़ी दिखती है... गाढ़ी हो जाती है । आज लेखक को हर पग पर अपने अन्दर की उस रोशनी को टटोलना पड़ता है जिसके सहारे उसकी लेखन के प्रति आस्था टिकी हुई है ... बुझती हुई उस बाती की लौ को बार-बार उठाना पड़ता है । यहां उसका सहारा, एकमात्र सहारा वह खुद उसका अकेलापन है, हम में से कुछ खुद को इस भुलावे में रख सकते हैं कि यह आस्था वे किसी विचारधारा या समूह या कि उसके लिए काम करने के उत्साह से आती है... लेकिन उन्हें भी थोड़ा आगे चल कर या तो विचारधारा और समूह में जज्ब़ हो जाना पड़ता है या फिर अपनी लेखकीय अस्मिता को बचा रखने के लिए फिर अपने आप में लौटना पड़ता है ।[1]

चूंकि निर्मल वर्मा का साथी उनका अकेलापन है, इसलिए वह आस्था भी अटूट है । जब भी हम निर्मल वर्मा के कंसर्ट में शामिल होते हैं और उनकी खास कम्पोजिशन को सुनते हैं तो वह एक मायावी अन्धेरे से गुज़ार कर ले जाती है - गहरे और उदास अन्धेरे में । इस कम्पोजिशन में हम सुनते हैं पोनो की स्वप्निल दुनिया का सन्नाटा, बीरेन चाचा की आंखों की चमक, बाबू के बालों से भरे हाथों की गंध और मुंह इधर से उधर घूमती खुबानी की चपचपाहट । इन सभी स्वर लहरियों में जो विभिन्न कोनों से उठ कर आपस में टकराती हुई गुम होती रहती है, के बीच अन्धेरे के थम की तरह बच्ची के अकेलेपन की लम्बी स्वर लहरी, जो गुम होती और गड्डमड्ड होती आवाजों को पामथकर बाकायदा खड़ी

---

1. गोविंद मिश्र - साहित्य का सन्दर्भ

रहती है - धीरे-धीरे करके हमें अपने साथ शामिल कर लेती है । हम उस अन्धेरी दुनिया में गुम होने लगते हैं, शिमला की उदास दुपहरियों में - जब छतों पर खुबानियां टपकती हैं - बीरेन चाचा के काटेज में, जहां लान पर नीला नीला सा अन्धेरा गिरता है, उन सूनी उदास शामों में - जब बच्ची के कमरे में - सिवाय अन्धेरे और कुछ नहीं होता । यह अंधेरी दुनिया जिसे रचनाकार ने कभी देखा था और अब उसके बारे में उसे कुछ खास याद नहीं, बस अन्धेरे में फैले हुए कुछ धब्बे हैं, कुछ बिम्ब हैं, जो आपस में गुंथ कर उसके लिए एक दुनिया खोल देते हैं । फ्लाबे और जार्जेला को जानने के बाद, मां के न रहने पर, बीरेन चाचा के इटली बस जाने पर - अब, वह अन्धेरी दुनिया - जिसमें पौनों शिमवा की कहानी लिखने वाले आदमी के साथ प्रेम करती थी । अब वह बच्ची को देखने की कोशिश कर रहा है, अन्धेरे में बुदबुदाते होठों की भाषा को पकड़ने की कोशिश करता है, दो संगमरमरी बांहों की अकुलाहट, जो एक रात अचानक रोशनी का पारा तोड़ कर पंखों के समान फड़फड़ाई थीं, को जानने की कोशिश करता है और अन्ततः शिमला की उस उदास और अन्धेरी दुनिया को हमारे लिए खोल देता है - स्वरों की खुशबूदार मिठास के साथ और ये खुशबूदार मीठे स्वर हमें अक्सर उदास कर जाते हैं । तब हम उदासी से भरे हुए, उस दुनिया में जाते हैं और उस अन्धेरे के होकर रह जाते हैं । धीरे-धीरे हमारी अपनी दुनिया उसमें गुम होने लगती है, तब हम बच्ची से अकेलेपन की उदासी को महसूस करते हैं - संगीत की इस उदास और महीन सिम्फनी को सुनते हुए ।

यह उदासी जो तरह-तरह की स्वर लहरियों से भरी है और ये लहरियां अकेली होती हुई भी एक दूसरे में गड्ड्मड्ड हैं और आपस में टकराते गुंथते एक उदासी पैदा करती हैं । `अंधेरे में ` की उदासी एक नदी है - एक अज्ञात और संकरायी नदी, जो शांत और गम्भीरता से बह रही है ।

अपना पिछला इतिहास बताते हुए - इतिहास - जिसमें उसने पत्थरों से सिर टकराया था, टेढ़े-मेढ़े रास्तों और अन्धेरी सुरंगों के बीच से गुजरते हुए । हम उस शान्त, गम्भीर नदी पर हथेली औंधा कर रख सकते हैं - हमें एक ठण्डक महसूस होगी ।

'इस उदासी और अकेलेपन में डबडबाए `अंधेरे में ` कहानी में चार स्वर-लहरियां प्रमुख हैं - जो अपनी अपनी सरहदों पर मन्द स्वरों में गूंजती हैं । पोनो बीरेन, बानो और बाबू । पोनो के दायरे की सरहद, घर में होते हुए भी घर में नहीं है । बीमार बच्ची के पास कुर्सी पर ऊंघते हुए वह अचानक लम्बी `यात्राओं ` पर निकल पड़ती है - रोशनी की खोज में भटकती - शिमले के घर की चौखट से बाहर - अनाम और अनजान यात्राओं पर । बच्ची की बीमारी और पति के सानिध्य से छिटकती हुई उसकी `यात्रा` एक स्थगित जीवन के सत्य को पकड़ने के लिए आतुर है । बच्ची के बालों को हिलाते हिलाते अचानक पोनो की उंगलियों में एक अजनबी चीज़ उतरने लगती है । घर में रहते हुए भी यह बार बार यात्राओं पर निकल पड़ती है तथा अन्धेरे और एकाकीपन का एक अजीब बोध लेकर लौटती है । यही बोध पोनो को, बच्ची से दूर करता जा रहा है । जितनी भी `यात्राएं ` पोनो ने की हैं, वे सभी उसे बच्ची से दूर करती रही हैं । ऐसा इसलिए उसके जीवन का अमूल्य अनुभव - प्रेम - उसके विवाह से पहले या उसके समानान्तर घटित हुआ है । पोनो के प्रेम के बोध को बच्ची की उपस्थिति बार-बार खण्डित करती है । दरअसल बच्ची इस कथा में और पोनो के जीवन में एक अलग देशकाल का हस्तक्षेप है । इस चीज़ से बच्ची वाकिफ है और इस अजनबियत को वह प्राय: महसूस करता रहा है - जब कभी मां की आंखों को देखता हूं, तो न जाने क्यों मुझे उस रात जंगल के झुरमुट का घना-

घना-सा अन्धेरा याद आ जाता है ।[1] बच्ची अन्धेरे की इस वीरान चुप्पी से लगातार डरता रहा है - जागते हुए भी और नींद में भी । अन्धेरे की यह वीरान चुप्पी - जो पोनो और बाबू के बीच बढ़ती जा रही है, बच्ची के लिए असह्य है - उस रात देर तक मैं बिस्तर पर बैठा-बैठा कांपता रहा ।... लगता है मानो कमरे का अन्धेरा, कमरे से अलग होकर एक मैले चीथड़े की तरह मेरी आंखों के चारों ओर घूम रहा है ।[2]

बहरहाल, पोनो की इस तरह की यात्राएं खुद उसके लिए पीड़ामय हैं । वह वैवाहिक जीवन की विडम्बना और प्रेम की अतृप्ति के बीच भटकती रहती है । इन चीजों ने उसके लिए एक नितान्त अकेला और अभेद्य संसार बना डाला है । इस पीड़ा का कोई अन्त नहीं है और यह अनन्त पीड़ा धीरे-धीरे बच्ची की मानस पर ग्लेसियर की तरह पिघलती है, जिसे वह अपने मन के किसी कोने में धीरे-धीरे दबाता जाता है ।

यह उदास लहरी बच्ची से तो टकराती ही है, आबू और बीरेन चाचा से अपने अपने दायरे में टकराती रही है । बच्ची से टकराने वाली एक दूसरी उदास लहरी है - बाबू की उदासी और अकेलापन । बाबू कभी भी बच्ची के कमरे में नहीं आए । उनकी अपनी एक अलग दुनिया है - एक अलग द्वीप । इसमें है सिगार की गर्म-गर्म गन्ध, जिससे कमरा भरा रहता है तथा एक और गन्ध जिसे बच्ची कभी नहीं जान पाया । जब भी बच्ची ने बाबू के बारे में सोचा उसे हमेशा उनके प्रति सहानुभूति ही उमड़ी । वे, उसे हमेशा अकेले दिखाई पड़े, जहां मां बिलकुल अनुपस्थित थी ।

---

1. निर्मल वर्मा - परिन्दे
2. वही

ऐसे क्षणों में, जहां बाबू के साथ मां नहीं होती, बच्ची हमेशा बाबू से सहानुभूति रखता है । उनके अकेलेपन को देखकर उदास हो जाता है । बाबू का दायरा, जिसमें अफसरी है, तक्कलुफ है और हमेशा उनका यह सीमित दायरा पोनो को एकत्रित नहीं रख सका । पोनो हमेशा बांक्षित प्रेम के लिए इस दायरे से बाहर भागती रही । इन दायरों की अलग अलग स्थिता बच्ची को त्रास देती है ।

हालांकि बीरेन चाचा के घर आने पर बच्ची को हमेशा सुकून मिलता रहा है । उनके आने से उसकी दुनिया कुछ क्षणों के लिए खिल उठती है, लेकिन वीरेन चाचा का दायरा जब भी कभी बच्ची से टकराया है, उसे अन्य दायरों से टकराने पर जैसा त्रास मिलता रहा है, वैसा ही मिला है । वीरेन चाचा की अन्धेरी काटेज में रखी एल्बम में मां की तस्वीर में उसे मां दिखाई ही नहीं दी । काटेज से जाने के बाद मां हंसी थी और एक झूठ कहा था - जो बच्ची को कभी पसन्द नहीं आया ।

पोनो कुछ दिनों के लिए घर से चली गई हैऔर बच्ची समझता है कि `वे ` मौसी के घर गई हैं । उसे मां गायब हो जाना कभी समझ में नहीं आया । बीरेन चाचा और मां के इस तरह के सम्बन्धों को लेकर बच्ची अक्सर उदासी महसूस करता है । वह किसी से नहीं कहता । बल्कि इन घटनाओं से पैदा हुए अन्धेरे से डरता भी नहीं है । उस अन्धेरे को चुपचाप अपने भीतर छुपा लेता है ।

और बानो, जो बीमार बच्ची के पास रोज़ आती है - तीन पगडंडियां पार करके । बानो के भी दायरे की टकराहट अब भी बच्ची से हुई है, वह अजनबी नहीं लगी । लेकिन उसकी रहस्यमयता उसे त्रास देती है ।

'दिल्ली जाना पक्का हो गया ?
मां आ जाएं तब ।
कहां गई है तुम्हारी मां ?
मौसी के घर ।
तुम्हें पक्का मालूम है कि वे मौसी के घर गई हैं ?
बानो ने रहस्यमयी आंखों से मेरी ओर देखा ।'

ऐसी रहस्यमयता में बच्ची को बान्ते का संग अच्छा नहीं लगता, पर क्रोधित होने लगता है, लेकिन यह निरीह बच्चा हमेशा अपने गुस्से को भी उस त्रास में साथ अपने मन के किसी कोने में दबा लेता है और मुस्कराने लगता है ।

इन चार छोटी-छोटी स्वर लहरियों के बीच अन्धेरे की थम की तरह बच्ची दिखाई देता है - अकेला, उदास और बीमार । बच्ची की अपनी कोई दुनिया नहीं है, दूसरों की दुनिया के दबावों और दायरों की टकराहट से उसकी अपनी दुनिया बन रही है - जिसे वह धीरे-धीरे समझने की कोशिश कर रहा है । वस्तुत: यही वह बिन्दु है जो हमें अपने साथ अन्धेरी और उदास यात्राओं पर ले जाने के लिए प्रेरित आमंत्रित करता है । बच्ची के स्वर का आरोह दूसरे सुरों पर टिका है, वह अकेला उस चढ़ाई को पूरा नहीं कर सकता, लेकिन पोनो, बाबू और बीरेन के दायरों की त्रासद टकराहट उसे अक्सर अवरोह की ओर ले जाती है और ऐसे क्षणों में बच्ची स्वयं संभला है । जब हम उसके आमंत्रण को स्वीकार करके उसके संग-संग इस यात्रा पर निकल पड़ते हैं, तब वह हमें एक ऐसी दुनिया में ले जाता है, जहां है - अन्धेरा, उदासी, अकेलापन और बीमारी की धुन्ध तथा सन्नाटा । इन सब को घेरे है - शिमला : एक उनींदा शहर ।

बच्ची अपनी दुनिया में रोशनी के टुकड़ों को पहचानने की कोशिश कर रहा है । कहानी में जितनी बार भी प्रयोग हुआ है, बच्ची उन सब के साथ जुड़ा हुआ है । कोई भी अन्धेरा बच्ची से अलग रह कर प्रयुक्त नहीं हुआ है और यह प्रयोग आकस्मिक नहीं है । वह बच्ची की दुनिया को खोलता है - उसकी एकाकी जिन्दगी को - वह जिन्दगी चाहे अभी छोटी है ।

'जब हम लान में वापिस आए तो हल्का, फीका-फीका सा अन्धेरा छाने लगा था ।'

'लान में नीला नीला सा अन्धेरा घिर आया ।'

'अन्धेरे में मेरा दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था ।'

'मैं अन्धेरे में आंखें फाड़े हत बुद्धि सा खड़ा रहा ।'

'कमरे में अन्धेरा था - हवा से खिड़की का पर्दा मेरे तकिए के ऊपर ज़ोर-ज़ोर से फड़फड़ा उठता था ।'

'वह अन्धेरे में चुपचाप खिसक कर बिलकुल मेरे सामने आ गई है ।'

'लगता है मानो कमरे का अन्धेरा कमरे से अलग होकर एक मैले चीथड़े की तरह मेरी आंखों के चारों ओर घूम रहा है ।'

'उसे हाथ में लिए देर तक अन्धेरे में खड़ा रहा ।'[1]

इस कहानी में अन्धेरा सिर्फ समय की सूचना नहीं देता, बल्कि समय के बारे में कुछ सूचित करने के बजाय वह विशेष रूपक बन कर कहानी

---

1. परिन्दे - निर्मल वर्मा

में गूंजता है । यह अन्धेरा हर व्यक्ति का निजी संकट है - उनका बीहड़ अकेलापन । अभेद्य और अकाट्य । इस अन्धेरे में सारे लोग जी रहे हैं । जी नहीं रहे - व्यतीत हो रहे हैं । कहानी के मामूली और गैर-मामूली दोनों तरह की घटनाओं के साथ अन्धेरा अनिवार्य रूप से चिपका हुआ है । यह वह दुनिया है जिसमें बच्ची बड़ा हो रही है । ज्यादातर अन्धेरे बच्ची और पोनो के बीच के सम्बन्ध सेतु पर लटके हुए हैं । वस्तुत: अन्धेरे के अधिकांश दायरे पोनो के इर्द-गिर्द के हैं या कह सकते हैं पोनो की वजह से पैदा हुए हैं । लेकिन शायद यह भी ग़लत है । वे प्रेम की वजह से पैदा हुए हैं - प्रेम के अभाव से उत्पन्न अंधकार । लेकिन प्रेम के अभाव का क्या कारण है ? इस कहानी में इसका कोई संकेत नहीं है । इसलिए हम यह भी नहीं कह सकते या सोच सकते कि पोनो और बीरेन का सम्बन्ध पोनो के विवाह के पहले से चला आया है । निर्मल वर्मा अपने कथा-साहित्य में इस तरह की समस्या को छूते भी नहीं हैं । उनका इशारा कहीं अधिक गहरे संकट की ओर है । असल में निर्मल प्रेम और विवाह के परस्पर, स्वाभाविक, स्वीकृत से चले सम्बन्ध की अवधारणा को प्रश्नांकित करते हैं । क्या यह मान कर चला जाए कि जहां विवाह होगा, वह अनिवार्य रूप से प्रेम होगा ही ? विवाह एक सामाजिक समझौता है - एक इंस्टीच्यूशन । परिवार का एक आधार । प्रेम इन्हीं चीजों तक सीमित नहीं है । वह इन सब के अतिक्रमित करता है । वह असीम है और अतर्क्य है । इसलिए एक सीमा तक ही उसकी व्याख्या संभव है । तो क्या पोनो और बीरेन का प्रेम तर्कातीत है ? कुछ हद तक इनका कारण निर्मल की सभ्यता समीक्षा में उपलब्ध है ।

निर्मल वर्मा ने अपनी एक कहानी `तीसरा गवाह` में लिखा है कि बहुत नामालूम कारण से प्रेम उत्पन्न होता है और ऐसे ही किसी

नामालूम कारण से धीरे-धीरे अड़ जाता है । तो क्या निर्मल वर्मा यह प्रतिपादित करते हैं कि प्रेम कोई ऐसी स्थायी चीज़ नहीं है जिस के विकास और ह्रास को ठीक-ठीक जाना जा सके ?

`अन्धेरे में ` कहानी में एक तस्वीर की चर्चा है । निर्मल वर्मा ने इस कहानी की गति में एक स्टिल फेंक दिया है । यह स्टिल जिसका कहानी की ऊपरी गति से कोई स्पष्ट सम्बन्ध नहीं है, लेकिन कहानी के काल में वह `स्टिल` कालातीत होकर चमक रहा है, कहानी उसके बिना पूरी हो ही नहीं सकती । यह `स्टिल` है, उस फोटो का जिस की चर्चा वीरेन करते हैं - रेसकोर्स की भीड़ दिखाई गई है - बहुत से लोग भीड़ में खो गए हैं, लेकिन एक अंग्रेज़ लड़की का चेहरा साफ दिखता है - वह पवेलियन के पास छाता लिए खड़ी है - जबकि और सब की आखें भागते हुए घोड़ों पर जमी हैं - उसकी गहरी उत्सुक आंखें पीछे की ओर देख रही हैं ... ।[1]

प्रश्न है कि वह क्या देखती है ? क्या यह जिए हुए समय को पलट कर देखना है ? क्या यह अपनी यात्रा की समीक्षा है ? या घोड़े की तरह भागते समय में लिप्त और उससे ग्रस्त `भविष्यमुखी` लोगों की प्रतिक्रिया में - ऐसा वह कर रही है ? होने के लिए तो यह भी हो सकता है कि वह अंग्रेज़ लड़की खुद पोनो की आत्मछवि हो या अतीत की कोई ऐसी छवि जो बीरेन की चेतना के फ्रेम में अब भी जस-की-तस हो ? बहरहाल इस कहानी का यह एक प्रतीक है - अकेलेपन और विषाद में लिथड़ा हुआ ।

`मनुष्य का अकेलापन और प्रेम की उसकी आकांक्षा` ये दो ऐसे तत्व हैं जो निर्मल वर्मा के कथा-साहित्य को विशिष्ट बनाते हैं । हालांकि

---

1. निर्मल वर्मा - परिन्दे

उनके कथा-साहित्य की और अनेक विशिष्टताएं हैं, लेकिन ये दो पक्ष वहां केन्द्रीय तत्व बन कर सामने आते हैं । उनकी कहानी `परिन्दे` हों या `दहलीज`, `अन्धेरे में ` हों या `पहला प्रेम` । `पिक्चर - पोस्टकार्ड ` हो या `तीसरा गवाह` । उनका उपन्यास `वे दिन` हो या `एक चिथड़ा सुख` । हर जगह से मनुष्य के अकेलेपन और उसकी रिक्तता की आवाज उठती है ।/

`एक चिथड़ा सुख` को लें - दिल्ली । मध्यवर्ग । बुद्धिजीवी । इरा, डैरी, नित्ती, बिट्टी, मुन्नू । मुन्नू को छोड़कर सभी वयस्क । बिट्टी इलाहाबाद की लड़की । मुक्त जीवन और अस्मिता की खोज में दिल्ली में रहती है । डैरी के निर्देशन में नाटक करती है, प्रेम करती है डैरी से । डैरी अपने शुरुआती जीवन में बहुत नीचे तक जा चुका है, इसलिए ऊपर आकर उदासीन हो गए हैं, नाट्य निर्देशक और बिट्टी के उदासीन प्रेमी। अपने खोए हुए प्रेम और जीवन की सहजता को खोजन पाने के लिए इरा इंग्लैण्ड से दिल्ली की ओर । उसके लिए दिल्ली का मतलब नाटक और नित्ती भाई । एक गृहस्थ आर्किटेक्ट नाटक के सेट्स डिजाइनर - उसके लिए इरा का प्रेम अपरिहार्य लगता है । लेकिन गृहस्थी के तंग गलियारे में वे इस अपरिहार्यता का वरण नहीं कर पाते और धीरे-धीरे प्रेम और घर दोनों से टूटते हुए आत्महत्या कर लेते हैं । मन्नू इस उपन्यास का सबसे पहला और सबसे अन्तिम पात्र है, जो एक हद तक लेखक की चिंताओं और आस्थाओं को भी कथा में खोलता है । एक किशोर लड़का जो बिट्टी का कज़िन है, लम्बे बुखार से त्रस्त होकर मन-बहलाव के लिए दिल्ली आया है । दिल्ली उसका अकेलापन है जिसमें उपन्यास के शेष पात्र छाया चित्रों की तरह खोते-भटकते और मिलते हैं । वह उन्हें देखता है और अपनी निस्संगता की कीमत पर कुछ अनुभव हासिल करता है । अनुभव उसकी डायरी में दर्ज है । यह उपन्यास मुन्नू की डायरी है । उसी का क्रमबद्ध संस्करण ।

लेकिन यह कथा का मोटा वर्गीकरण है - उसकी स्थूल रूपरेखा । इन रेखाओं के नीचे जो मानव अनुभव निर्मल वर्मा रच सके हैं, वे कुछ और ही हैं । इस उपन्यास के पूरे पात्र एक स्टिल लाइफ की तरह स्थित हैं । यह स्टिल लाइफ थोड़ी भिन्न तरह की है । उसमें हरकत है, आवाज़ के सहारे चलते हुए शब्द हैं, अस्मिता को बचाने के लिए बौने का छटपटाना और देखना है । हिलते, बोलते, रोते, हंसते, देखते और भोगते हुए भी समूचा पात्र-जगत मानो चित्रित करके जड़ दिया गया है । निर्मल वर्मा के अनुसार - यहां पर चीजें खुद अपनी ओर मुड़ कर देखती हैं और अनुभव बन जाती हैं ।उपन्यास में यही अनुभव हमारा अनुभव बनता है । देखने का, भोगने का अनुभव, मुन्नू की तरह, लेकिन थोड़ा सा भिन्न, क्योंकि उसके देखने में शामिल होने और भोगने की जो यातना है, वह भी हमारे देखने का हिस्सा बनती है ।

दुख के मन को परखने का संघर्ष `एक चिथड़ा सुख` की उपलब्धि है । उपन्यास में इस संघर्ष के दो आयाम हैं । एक में बिट्टी और डैरी इरा और नित्ती के बीच पिघलते पघराते सम्बन्ध हैं और दूसरे में इन सम्बन्धों से उपजती करुणापूर्ण जटिल मानव-नियति से साक्षात होते, टकराते मुन्नू का किशोर मन है । अगर थोड़ा सरलीकृत करके कहें तो एक आयाम भोगना और दूसरा देखना है । दोनों ही आयाम हमारे समकालीन जीवन और स्थितियों, मनुष्य और चीजों, व्यवहार और भाषा, चिन्तन और संवेदना के बीच फैलते शून्य से उपजते दुख को उभारते हैं ।[1]

`एक चिथड़ा सुख` में लगातार एक हवा चलती है सूनेपन की, जो पात्रों और चीजों को धीरे धीरे, लेकिन उनके भीतर तक पहुंच कर

---

1. मदन सोनी - निर्मल वर्मा : सृजन और चिंतन - सम्पादक : प्रेम सिंह

हिलाती रहती है - वह लौट आता था, बिस्तर के अपने हिस्से पर लेट जाता । वहां से दीवार पर एक बूढ़ी औरत का फोटो दिखाई देता था । बिट्टी से पता चला वह कोई मदर टेरेसा है... बिट्टी ने वह चित्र किसी अखबार से काट कर चिपकाया था । जब बाहर हवा चलती फोटो फड़फड़ाने लगती, अंधेरे में आंखें मूंदे वह चुपचाप उसकी फड़फड़ाहट सुनता रहता जैसे कोई चमगादड़ बार-बार उड़ता हुआ दीवार से टकरा जाता हो ।[1]

यह अकेलापन क्या है ? यह अकेलापन वह नहीं है जो भीड़ के बीच अकेले होने से उभरता है । दरअसल अपनी नियति के अन्धकार में - जहां तमाम तरह की लौकिक उपस्थितियों, सम्बन्धों से परे होकर मनुष्य अपने खोजने, पाने और खो देने का विवशता भरा संघर्ष करता है - वहां वह सचमुच अकेला होता है । निर्मल वर्मा के पात्र अकेलेपन की इसी अन्धेरी खोह में भटकते हैं । प्रसंगवश यहां मुक्तिबोध के `अन्धेरे में ` का भटकता नायक स्मरण हो आता है । वह फैंटेसी भी इसी अकेलेपन और उसमें अपनी खोई हुई `परम अभिव्यक्ति अनिवार` को खोजने पहचानने और पाने की छटपटाहट है ।

इस अकेलेपन के घेरे में सब हैं - बिट्टी, डैरी, निक्की, हरा और बिट्टी अपने भीतर के अन्धेरे में बाहर का उजाला ढूंढती है, वैसे ही वे सब एक दूसरे के भीतर अपने लिए अपने प्रेम के लिए जगह और उजाला ढूंढते हैं । लेकिन क्या ऐसा संभव है ? सार्त्र ने लिखा था,`दूसरे ही हमारा नरक हैं ।` डैरी , बिट्टी का अन्धेरा है और हरा निक्की का । स्ट्रिनबर्ग,

---

1. एक चिथड़ा सुख, निर्मल वर्मा

चेखव, ब्रेश्ट, वियर, बहस, रैकार्ड और पुस्तकों के उजाले में जाकर वे एक दूसरे को जानना चाहते हैं, उनके आन्तरिक संसार के पैटर्न को समझना चाहते हैं, लेकिन संभव नहीं हो पाता । वहां भी वे समझने का बहाना करते हैं । वे एक-दूसरे से अलग नहीं हो पाते । यद्यपि मुक्ति के लिए वे ऐसा चाहते हैं । वे पार्ट करते हैं । जीवन में अभिनय करते हैं और अभिनय में अपने अकेलेपन से पैदा हुई पीड़ा पिघलाते हैं - रोते हैं ।इरा इंग्लैण्ड वापस जाना चाहती है । बिट्टी दिल्ली से कहीं और लेकिन वे इस अन्धेरे से बच नहीं सकते । क्योंकि उसी में उनके प्रेम के गहरे तक पहुंची हुई जड़ें भी हैं । इरा की इसी मुक्ति की कीमत नित्ती की आत्महत्या से चुकती है और तब भी क्या वह मुक्त हो पाती है ?

'पता नहीं, हिन्दुस्तान के बाहर उसे क्या मिलेगा ?'

'और यहां ?' बिट्टी ने डैरी को देखा, 'यहां उसे क्या मिल सकता है ?'

'मिलता कुछ नहीं', डैरी ने कहा, 'लेकिन जब वह यहां आई थी, थियेटर में उसका मन लगता था... मैं सोचता था, वह अपने काम में इतना उलझ जाएगी कि दूसरी चीजों के बारे में भूल जाएगी, जिनका कोई हल नहीं है ।'

'दूसरी चीजें ।' बिट्टी क्षणों के आरपार देखने लगी, 'जिनका हल नहीं होता डैरी, क्या वे चीजें खत्म हो जाती हैं ?'

'खत्म नहीं होतीं ।' डैरी के स्वर में एक अजीब-सी कटुता भर आई ।'लेकिन वे छोटी हो जाती हैं ... अगर तुम्हें अपने काम में विश्वास हो, तो एक न एक दिन उन्हें भुलाया जा सकता है ।'

बिट्टी धीरे से हंस दी ।

'या फिर हताशा को बुद्धिमानी मान लिया जाए ।'

'कोई फायदा नहीं, बिट्टी ।' डैरी ने खाली निगाहों से बियर की बोतल को देखा, जो खुद खाली थी ।'वह अलग समय था - और हम दूसरे लोग थे । हम सोचते थे, एक दिन में सब कुछ बदला जा सकता है - वह पागलपन था ।'

'अच्छा ?' बिट्टी धीरे से हंस पड़ी, 'यह नार्मल ज़िन्दगी क्या होती है डैरी ? ब्रेश्ट के नाटक ?' बिट्टी के होंठ एक अजीब मुस्कान में खुल गए थे, 'रिकार्ड... किताबें ... शाम की बियर पीना ?'[1]

'अर्थ की खोज अर्थ नहीं हो सकती और अर्थ मिलता नहीं, इस विडम्बना से साक्षात्कार और पलायन में उम्र बीत जाती है । जीवन में यह अहसास इतनी आसानी या स्पष्टता से नहीं होता । वहां तो पलायन और साक्षात्कार का अन्तर भी धूमिल रहता है । आखिर ये दोनों ही शब्द प्रासंगिक हैं और प्रसंग जुड़ा हुआ होता है तथ्यों से । और तथ्य ? तभी तो निर्मल ने यह कथा एक लड़के की डायरी के माध्यम से कही है । डायरी जो समय को नहीं, क्षणों को बांध कर रखती है । वह मरी हुई तितली है, उड़ते हुए रंग की निर्जीव लोक । यह एक तरह का सौदा है... भूलने और याद करने के बीच ।[2]

---

1. एक चिथड़ा सुख - निर्मल वर्मा
2. सुधीरचन्द्र - निर्मल वर्मा : सृजन और चिंतन - सम्पादक : प्रेम सिंह

डायरी एक ऐसे लड़के की है जो अक्सर बीमार रहता है । निर्मल के लेखन में बचपन, बीमारी और मौत के अस्तित्व प्राय: प्रबल होकर उभरते हैं । ऐसा इसलिए भी कि ऐसी अवस्था में मनुष्य और अधिक अकेला हो जाता है - अपने अकेलेपन की गुफा में निरायास पाया जा सकता है । सामान्य बौद्धिक तार्किक परख से परे मानव चेतना की जिस बहुस्तरीय पकड़ को जाने अनजाने बिसरा या दबा दिया जाता है, उसी को बचपन, थियेटर, नशा और बीमारी के सहारे निर्मल वर्मा पुन: प्राप्त करते से लगते हैं । इनके धुंधलके में चेतना के नये-नये लोक आलोकित होते हैं ।

मौत पहले भी निर्मल के लेखन में आई है । पर अब वह जीने का अभिन्न अंग बन गई है । 'बीच बहस में' एक मौत हुई थी । लगा था कि दिवंगत के साथ ही उसके साथ होने वाली बहस भी समाप्त हो गई । पर बहस समाप्त नहीं हुई । हो भी कैसे ? बहस केवल उससे तो थी नहीं जो चला गया । वह तो अपने आप से है, उनसे है जो बच रहे हैं । और जो मौत भी हुई है, वह कोई टोटल, सम्पूर्ण मौत तो है नहीं । क्या कोई मौत टोटल होती है ? मरे हुओं का दुख कहां जाता है ?' मुन्नू बिट्टी से पूछता है । पर शायद उसको किसी से पूछने की ज़रूरत है नहीं । वह जीवन के एक क्रूर सत्य को पा चुका है ।

'और तब उसे लगता ... जैसे समय कोई ऊंचा पहाड़ है, और सब लोग अपनी-अपनी पोटलियों के साथ ऊपर चढ़ रहे हैं । हांफ रहे हैं बिना यह जाने कि ऊपर चोटी पर - वे सब हवा में गायब हो जाएंगे... और धूल में लदी-फदी पोटलियां... पता नहीं उनमें क्या भरा है, प्रेम, घृणा, निराशाएं, दुख, नीचे लुढ़का दी जाएंगी, जिन्हें दूसरे

लोग पकड़ लेंगे और फिर उन्हें पीठ ढोते हुए ऊपर चढ़ने लगेंगे ।'[1]

'बीच बहस में ' के बाद 'जिन्दगी यहां और वहां ' में मौत दो जीवितों के बीच मंडराती है, उनके सम्बन्धों को प्रभावित करती है । 'एक चिथड़ा सुख' में मौत हमारी चेतना को और गहरे स्तर पर पकड़ती है । वह उससे जुड़ जाती है । यहां और वहां का अन्तर झरने लगता है । हम अपने को मार कर इसी जीवन में नया जन्म ले सकते हैं । किसी की मौत हमें नया जन्म दे सकती है । हम जीकर भी मर सकते हैं ।

ट्रेजेडी यह नहीं है कि हम दूसरों को नहीं समझते या यह कि अर्थ की खोज ही अर्थ बनने लगती है । तलाश तो वास्तव में अपनी होती है । दूसरों के माध्यम से, अर्थ के माध्यम से अपनी तलाश ।

'तुम क्या सोचते हो, अगर वह ज़िन्दा होती, तो मुझ से बहुत निराश हो जाती ?'

'बिट्टी ', उसका स्वर न जाने क्यों बहुत रुंधा-सा हो आया - 'वह तुम्हें बहुत मानती थी ।'

'मुझे नहीं... वह लड़की कोई और थी ।'

'और तुम कौन हो ?'

'मैं -' उसने बहुत धीमे से कहा, 'मैं उसे ही ढूंढने दिल्ली आई थी ।'[2]

---

1. निर्मल वर्मा - एक चिथड़ा सुख
2. वही

पर यह कौन है जिसे ढूंढने बिट्टी दिल्ली आई थी, इलाहाबाद से, जिसकी तलाश में वह दिल्ली भी छोड़ने का सोचती थी ? और बिट्टी के वे दोस्त जो अपनी आधी ज़िन्दगी बाहर गुजार कर लौटे थे ? या डैरी, जिसकी बहन बताती है कि वह डैरी है ही नहीं ।

कौन हैं वे लोग जो अपने आप को पा लेते हैं ? डैरी ? जो बिहार से लौट कर थियेटर में लग गए हैं, उन चीजों को छोटा करते हुए, भूलते हुए, जिनका कोई हल नहीं है । या निक्की भाई । इरा और अपने परिवार के बीच झूलते हुए - अधूरे निक्की भाई । ऐसे अनोखे सम्पूर्ण ढंग से अधूरे कि अपना अधूरापन पोंगा सा जान पड़े । निक्की भाई जो वह कर सके जो बिट्टी या उसके अन्य दोस्त नहीं कर सके थे । या फिर मदर टेरेसा ?

'एक चिथड़ा सुख' में लगातार स्ट्रिनबर्ग के एक नाटक का रिहर्सल चलता रहता है । नाटक और जीवन के पार्ट कुछ इस तरह घुलमिल गए हैं कि उन्हें अलग करना कठिन ही नहीं, गलत भी लगने लगता है ।

'तुम रो रही हो ।' उसने कुछ ऐसे कहा, जैसे स्वयं बिट्टी को उसके रोने की सूचना दे रहा हो ।

बिट्टी ने सिर हिलाया ।

'सचमुच नहीं ' बिट्टी ने कहा, 'मेरे पार्ट में रोना बदा है ।'

इसका ऊपरी होंठ जरा-सा सिकुड़ गया, जैसे वह आधा मज़ाक हो आधा सच... ।

'फिर क्या तुम्हारे आंसू असली नहीं थे ?'

'तुम्हें वे बनावटी लग रहे थे ?'

'बनावटी की बात नहीं... लेकिन अगर तुम पार्ट में रो रही थीं, तो वे असली कैसे हो सकते हैं ?'[1]

और जब जिन्दगी और नाटक को अलग किया भी जाता है तो पता चलता है कि ज़िन्दगी ज्यादा भयानक है 'क्योंकि वहां किसी सीन को नहीं टाला जा सकता, किसी को नहीं बचाया जा सकता ।' न हम अपने लिए कुछ कर सकते हैं, न कोई हमारे लिए कुछ कर सकता है । भोगना ही प्रारब्ध है ।

निर्मल वर्मा के रचना-जगत की अपनी एक विशिष्ट पवित्रता है । जिसका आधार है व्यक्ति की पवित्रता - अभिशप्त किन्तु गरिमय-मय ।

'धूप का एक टुकड़ा' कहानी की स्त्री जो पन्द्रह वर्ष पूर्व विवाहित हुई, आठ वर्ष तक पति के साथ रहने के बाद, एक दिन अलग रहने का निर्णय ले लेती है । किसी एक दिन रात को सोते हुए कोई खटका होता है । वह खटका बाहर नहीं, भीतर हुआ था । बल्कि भीतर भी नहीं, वह अन्धेरे में चिमगादड़ की तरह उसके चारों ओर फड़फड़ाने लगा था । यहां कहानी से एक उद्धरण देख सकते हैं --

'मैं पलंग पर आ कर बैठ गई, जहां वह लेटा था और धीरे धीरे उसकी देह को छूने लगी । उसकी देह के उन सब कोनों को छूने लगी जो एक ज़माने में मुझे तसल्ली देते थे ।... बरसों पहले की गूंज जो उसके अंगों से निकल कर मेरी आत्मा में बस जाती थी, अब वह कहीं नहीं थी । मैं उसी तरह उसकी देह को टोह रही थी, जैसे कुछ लोग पुराने खण्डहरों पर

---

1. निर्मल वर्मा - एक चिथड़ा सुख

अपने नाम खोजते हैं जो मुद्दत पहले उन्होंने दीवारों पर लिखे थे । लेकिन मेरा नाम वहां कहीं न था । और कुछ निशान थे जिन्हें मैंने पहले कभी नहीं देखा था । मैं रात भर उसके सिरहाने बैठी रही और मेरे हाथ मुर्दा होकर उसकी देह पर पड़े रहे । मुझे यह भयानक सा लगा कि हम दोनों के बीच जो खालीपन आ गया था, वह मैं किसी से नहीं कह सकती ।'[1]

इस उद्धरण में स्पष्ट है कि स्त्री ने अपने और पति के सम्बन्धों में सजीव अनुभूति की अपेक्षा आदत, रोज़मर्रापन या ढर्रा एकाएक पहचान लिया था । यह आदत उसकी आन्तरिक प्रतिभा या अस्मिता को, जो सजीव संवेदनों में ही अस्तित्वमान बनी रह सकती है, झूठा बनाती है । इसे पहचानते ही वह अकेली हो जाती है । उसका यह दुख इतना आन्तरिक और निजी है कि उसके दुख को बांट सकना दूसरों के लिए लगभग असम्भव है । दूसरे फैसला दे सकते हैं - गलत या सही का । उसका पति न तो क्रूर है, न ही दूसरी औरतों के साथ जाता है । उसका कोई अपराध नहीं । उसमें किसी तरह का अनौचित्य नहीं । लेकिन सम्बन्ध आदत या ढर्रा बनकर मानवीय अनुभव को न केवल दुर्घटनाग्रस्त करते हैं, बल्कि उसे अजनबी भी बना देते हैं । इस दुर्घटना और अजनबीपन की यातना, उसकी असुरक्षा और ख़तरे को झेलने और उसके विरोध में खड़े होने का साहस उसी को हो सकता है जो अपनी आन्तरिक प्रतिभा को सांस्थानिक टेरर से घिरा हुआ पाए और लगातार उसका निषेध करते हुए दुख उठाता रहे ।[2]

---

1. निर्मल वर्मा - कव्वे और काला पानी
2. प्रो० नित्यानन्द तिवारी - सृजनशीलता का संकट

वह कहती है -

'एक बात मुझे अभी तक समझ में नहीं आती । भूचाल या बमबारी की खबरें अखबारों में छपती हैं । दूसरे दिन सब को पता चल जाता है कि जहां बच्चों का स्कूल था, वह खण्डहर है, जहां खण्डहर है वहां उड़ती धूल । लेकिन जब लोगों के साथ ऐसा होता है तो किसी को कोई ख़बर नहीं होती ।'[1]

कामू ने लिखा है कि अखबारों की दिलचस्पी सिर्फ सड़क में है, घरों में नहीं । घरों में जिनकी दिलचस्पी है, वे किसी मानवीय उष्मा से प्रेरित होने के बजाय सिर्फ निर्णय देते हैं । नैतिकता की बात करते हैं । निर्मल वर्मा के पात्र किसी बाहरी नैतिकता में विश्वास नहीं करते । वहां अपने प्रति ईमानदार होना, सबसे बड़ी नैतिकता है । 'वे दिन' के रायना और कथावाचक 'मैं' के प्रेम को इसी पृष्ठभूमि में समझा जा सकता है । उनका वहां सिर्फ तीन दिनों का साहचर्य है, प्रेम है । उनमें इन तीन दिनों के अतिरिक्त साहचर्य पाने की कोई खास आकांक्षा भी नहीं है । ऐसा इसलिए कि वे प्रेम की गहनता पर विश्वास करते हैं, उसकी सतही विलम्बित नैरन्तर्य पर नहीं । लेकिन यह प्रेम भी अकाट्य और समर्पण में डूबा हुआ नहीं है, बीच-बीच में मानवीय गरिमा को ध्वस्त करनेवाली बीते हुए युद्ध की गंध में सनी हुई स्मृतियां उन्हें खुरचती हैं और वे अपनी पीड़ा की मांद में लौट जाते हैं । यह लौटना क्या है ?

'एक दूसरी कहानी 'जिन्दगी यहां और वहां' में प्रेमी प्रेमिका एक इच्छा मांगते हैं । 'उस शाम मिन्टो रोड ब्रिज के नीचे जब ऊपर

---

1. निर्मल वर्मा - कव्वे और कालापानी

ऊपर रेल गुजर रही थी - उन दोनों ने एक ही इच्छा मांगी थी - एक दूसरे से अलग होने की ... वे जितना ज्यादा एक दूसरे को चाहते थे, उतना ही एक दूसरे से अलग होने के लिए तड़पते थे ।"

यह इच्छा और तड़पना किसी भावात्मक, मनोवैज्ञानिक या अन्य किसी परिस्थितिगत कारण से नहीं है, वह एक मेटाफिजिकल जैसा सत्य है, जिसका साक्षात्कार आधुनिक युग में समाज से विच्छिन्न होने की प्रक्रिया में व्यक्ति को हुआ है ।[1]

वस्तुत: निर्मल वर्मा के पात्र उस सभ्यता की उपज हैं जिसने अपना `सेल्फ` खो दिया है । वे आत्महीन खाली डिब्बे की तरह हैं जिसमें खालीपन बजता रहता है । ये लोग अकेले ही नहीं, अधूरे भी हैं, इसलिए वे दूसरे को प्रेम नहीं कर पाते । उनमें सिर्फ प्रेम की आकांक्षा है । निर्मल वर्मा आधुनिक मनुष्य के प्रेम को सिर्फ अनुभूति तक सीमित नहीं रखते, वे उसे दार्शनिक स्तर तक ले जाते हैं । डी. एच. लारेंस के उपन्यासों में वर्णित प्रेम की ही तरह निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में भी एक प्रेम एक समस्या के रूप में ग्रहण किया गया है ।

---

1. प्रो. नित्यानन्द तिवारी - सृजनशीलता का संकट

छठा अध्याय

निर्मल वर्मा के कथा-साहित्य में प्रेम के चित्रण का स्थापत्य

निर्मल वर्मा के कथा-साहित्य में प्रेम के चित्रण का स्थापत्य

एक समय था जब कहानी का मूल्यांकन, कथानक, चरित्र, चित्रण, संवाद, उद्देश्य आदि तत्वों के आधार पर किया जाता था । तब कहानी एक प्रदत्त रूपरेखा में भरी गई एक कथा होती थी । उसका दायित्व कुछ चरित्र (या चरित्रों) के माफ़्रत जीवन के किसी पहलू या सत्य को पाठक तक पहुंचाना होता था । वातावरण-चित्रण का महत्व तो था, लेकिन उपजीव्य या अलंकरण के रूप में । कहानी के रचना-विधान में उसे केन्द्रीय महत्व प्राप्त नहीं था । आधुनिक कथा-साहित्य में रेणु और निर्मल ने परिवेश को अत्यन्त महत्वपूर्ण बना दिया । बल्कि इन रचनाकारों ने बहुत हद तक परिवेश को रचना की अन्तर्वस्तु का अनिवार्य हिस्सा बना दिया । इस दिशा में इससे पहले अज्ञेय ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । `शेखर : एक जीवनी` और `नदी के द्वीप` में परिवेश का चित्रण बहुत ही सधे तरीके से हुआ है, लेकिन वहां भी वह आत्यंतिक रूप से अनिवार्य नहीं बन पाया है । रेणु और निर्मल ने परिवेश को ही (कई बार) कथानक बना दिया है । `मैला आंचल` के बारे में तो कहा ही जाता है कि परिवेश ही उपन्यास का नायक है । इसी तरह हम निर्मल के कथा-साहित्य के बारे में भी कह सकते हैं कि परिवेश ही उसका आधार है । कृष्णा सोबती के अनुसार `निर्मल का पूरा मिजाज - टेम्परामेंट - कवि मन का है । वही इंटेन्सिटी, वही रूमानियत, वही अधखुली आंखों से यथार्थ को अलग कर डालने की लापरवाही ।`[1]

---

1. कृष्णा सोबती - हम हशमत, पृ० 15

सबसे पहले बिम्ब-निर्माण-प्रक्रिया को आत्यंतिक महत्व कविता में मिला । एज्रा पाउंड ने तो यहां तक कहा कि अनेकों पोथे लिखने की तुलना में साहित्य को एक सार्थक बिम्ब प्रदान करना कहीं अधिक महत्वपूर्ण है । कविता में तो बिम्बों का आग्रह रखने वाली 'बिम्बवाद' नाम की पूरी एक धारा ही चल निकली । हिन्दी कवियों में अज्ञेय और मुक्तिबोध का बिम्ब-विधान अत्यन्त प्रभावशाली रहा है । बाद में कहानी में भी बिम्बों के महत्व को पहचाना गया । कहानीकारों ने हिन्दी साहित्य को नए-नए बिम्ब प्रदान किए, जिसको रेखांकित करते हुए नामवर सिंह ने लिखा है, 'नए बिम्ब वस्तुत: वह कहानीकारों के विकसित ऐन्द्रिय-बोध के सूचक हैं और जो कहानीकार जितना ही संवेदनशील है, उसकी कहानी का वातावरण उतना ही मार्मिक और सजीव हुआ है । इस दृष्टि से निर्मल की कहानियां सबसे अधिक प्रभावशाली हैं ।'[1]

निर्मल वर्मा अत्यधिक संवेदनशील कहानीकार हैं, उनकी संवेदनशील निगाह से कोई भी चीज़ छूटने नहीं पाती है । वे हर चीज़ को न सिर्फ देख ही लेते हैं, बल्कि उसे हू-बहू अपनी कहानियों में उतार देते हैं - जैसे वे चीजें काले कार्बन से सफेद कागज पर उतार ली गई हों । उनके बिम्ब निर्माण की क्षमता पर यदि कृष्णा सोबती यह लिखती हैं तो सटीक ही टिप्पणी करती हैं कि एक साथ जो भी कलम ढेरों धूप हवाएं, चांदनी, रूई सी बर्फ, बर्फ के टीले, फूलों-से मुखड़े ऐसे आंक सके, जैसे निर्मल ने आंके हैं, उन्हें स्वर और संज्ञा दे सके, यकीनन वह बड़ी कलम है ।[2]

---

1. नामवर सिंह - कहानी : नई कहानी, पृ० 44
2. कृष्णा सोबती - हम हशमत, पृ० 13

निर्मल वर्मा न सिर्फ दृश्यों को, बल्कि स्वर, गंध एवं स्पर्श जैसी अमूर्त अनुभूतियों को भी ऐसी अभिव्यक्ति देते हैं कि वे हमारे समक्ष मूर्तिमान हो जाती हैं, एक ठोस रूप धारण कर लेती हैं । और जहां तक स्वर-बिम्बों की समृद्धि का सवाल है, उस सिलसिले में तो वे अद्वितीय हैं ही । इससे भी बड़ी बात यह है कि उनकी निगाह विशेषीकरण की निगाह है । वे 'चीजों की भीड़' को नहीं, बल्कि किसी चीज़ के वैशिष्ट्य को देखती हैं । इसीलिए हमें उनकी कहानियों में हर चीज़ अपनी अलग सत्ता लिए हुए दृष्टिगोचर होती है ।

उनका बचपन प्राय: पहाड़ों पर बीता है । इसीलिए उन पर प्राकृतिक दृश्यों के गहरे संस्कार पड़े हैं । वे न सिर्फ पहाड़ी इलाकों के बल्कि शहरों में भी यत्र-तत्र उभर आए प्राकृतिक सौन्दर्य को अपनी कहानियों के ताने-बाने में समाविष्ट कर लेते हैं ।

वातावरण या दृश्य का वर्णन करना एक साधारण - सेकेंडरी काम है - और किसी दृश्य या वातावरण को किसी भावक की इन्द्रियानुभूति के लिए सुलभ कर देना उसे एकदम मूर्तिमान कर देना, एक अलग बात है - एकदम असाधारण और विशिष्ट । इसके लिए अनिवार्य है कि रचनाकार का ऐन्द्रिय-बोध असाधारण रूप से विकसित हो ।

निर्मल वर्मा के बिम्ब-निर्माण की प्रक्रिया की सबसे बड़ी विशेषता है कि वे इस सिलसिले में असाधारण ललक से काम लेते हैं । वे अपने बिम्ब निर्माण में न सिर्फ अत्यधिक वर्णन से बचते हैं, बल्कि वे इस प्रक्रिया में किसी भी शब्द के अनावश्यक प्रयोग से भी बचते हैं । हम उनके बिम्ब विधान में किसी प्रकार का रद्दोबदल नहीं कर सकते ।

वे दृश्यों को काव्यसुलभ कोमलता से देखते हैं । उनके यहां जब धूप का एक टुकड़ा एक खरगोश बन जाता है तो हमारे अन्तर्मन का कोर भीगे बिना नहीं रह पाता -

'एल्प्स भीतर अन्धेरा है, या शायद अन्धेरा नहीं है - हम बाहर से आए हैं, इसलिए सब कुछ धुंधला सा लगता है । बाहर दिसम्बर की मुलायम धूप है । जब कभी दरवाजा खुलता है, धूप का एक सांवला सा धब्बा खरगोश की तरह भागता हुआ घुस आता है, और जब तक दरवाजा दोबारा बन्द नहीं होता, वह पियानो के नीचे दुबका-सा बैठा रहता है ।[1]

निर्मल वर्मा आधुनिक मनुष्य को एक विडम्बनापूर्ण स्थिति पाते हैं । वे कहते हैं कि मनुष्यता के इतिहास में मनुष्य के दो पतन हुए हैं - पहला वा जब वह प्रकृति से कट गया । दूसरा वह जब वह सामूहिकता से कट गया । अब वह स्वतंत्र हो गया, लेकिन अनाथ हो गया। इस पतन के पूरे दृश्य में वह औद्योगिक समाज की भूमिका को रेखांकित करते हैं - जब मनुष्य प्रकृति पर विजय पाने के लिए व्याकुल हो उठा । प्रकृति से कटना उसका (मनुष्य का) अभिशाप साबित हुआ । इसी सन्दर्भ में निर्मल जी 'नेहरूवियन' के विकास के माडल की आलोचना करते हैं ।

तो मुख्य बात यह है कि प्रकृति ही मनुष्य को संरक्षण दे सकती है । ऊपर जैसा कहा गया है कि निर्मल वर्मा के कथा लोक में प्रेम एक विडम्बनापूर्ण स्थिति में है, प्रकृति और निर्मल वर्मा के पात्रों के बीच एक तनाव विद्यमान रहता है । प्रकृति सहज है, सजीव है, सतत प्रवहमान है, लेकिन समकालीन मनुष्य अपने अकेलेपन के घेरे में कूबड़ उगाए पत्थर की तरह अभिशप्त खड़ा है । इस द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध से एक विडम्बनाबोध निर्मल जी के कथा-साहित्य में पैदा होता है । कई बार यह प्रकृति उसे वाणी देती है, उसके अकेलेपन के गर्द-गुबार को झाड़ कर उसे स्वीकार लेती

---

1. निर्मल वर्मा - जलती झाड़ी, पृ0 14

है, और कई बार उसे अपने ही बनाए हुए कारा में छोड़ देती है ।

'यही समय होता था । यही घड़ी । मैं कुर्सी पर बैठा रहा करता था... एक ठण्डी सी सिहरन को अपनी समूची देह में दबाता हुआ । सामने खिड़की थी, शीशों पर कुहरा जम गया था । मैंने रूमाल निकाला । फिर उसे आंखों पर दबा कर मेज पर सिर टिका दिया । मैं देर तक ठिठुरता रहा । कमरे की अंगीठी में लकड़ियां पड़ी थीं - सूखी, अधजली । रोशनदान में फंसा, पुराना अखबार बार-बार कांपने लगता था ... जैसे कोई पक्षी उड़ने के लिए बार-बार पंख फड़फड़ाता हो - और फिर असहाय सा बैठ जाता हो ।

'तुम विश्वास करते हो ? सच बताओ ।...'

वही एक आवाज । हर दिन इसी घड़ी में वह मुझे पकड़ लेती थी... ।[1]

बाद में रायना और इन्डे आनिहोरियन में संगीत सुनने जाते हैं तो वर्णन से लगता है कि उसमें दृश्य हम खुद मौजूद हैं । मोत्सार्ट का कम्पोजिशन सुनकर, सुनते हुए अचानक रायना कहती है --

'यह वियना है ।' रायना ने तनिक उत्तेजित होकर अपना हाथ मेरी बांह पर रख दिया । वह ठण्डा था और वह अब भी ठिठुर रही

---

1. निर्मल वर्मा - वे दिन, पृ० 7

थी । स्टेज पर बैठी लड़की अनवरत, एक लय में बोल रही थी ।... फिर लड़की का चेहरा अन्धेरे में छिप गया... स्क्रीन के पीछे से धीरे-धीरे ग्रामोफोन का स्वर उठा था - वसन्त के झोंके की तरह, और फिर वह बह गया था कुछ पत्तों की तरफ, जो घूमने लगे थे, धूल, हवा और खुले दरवाजे के आगे - फिर दरवाजा भी नहीं था और अन्तहीन खुलापन था जिसे एक पत्ते या पत्थर से ढका जा सकता था... फिर सब शान्त हो जाता था और मूक स्तब्ध आरकेस्ट्रा के जंगल से सिर्फ एक वायलन की सांस उठती थी, घास पर हिलती हुई - एक चौंकी सी चीख, सरसराते पानी के नीचे एक चमकीले पत्थर की तरह, भीगी, कठोर और चमकीली, जिसे तुम छू सकते थे, फिर वह मरने लगती थी । और यह मानते हुए भी कि वह मर रही है... तुम कुछ नहीं कर सकते थे । उसके बाद स्क्रीन पर वियना नहीं था... ।

मैंने धीरे से अपना हाथ उसके कन्धे पर रख दिया । अन्धेरे में संगीत दो व्यक्तियों को कितना पास खींच लाता है, वह उस रात पहली बार पता चला । उसने मेरी ओर देखा, फिर मेरे हाथ को कन्धे से उठा कर अपनी हथेलियों के बीच भर लिया ।[1]

निर्मल वर्मा अपनी भाषा को वहां ले जाते हैं जहांवह पिघल कर रंग बन जाती है - रंग और गन्ध और राग । एक चिथड़ा सुख के दूसरे अध्याय में हवा का यह राग है :

---

1. निर्मल वर्मा- वे दिन, पृ0 137

'काफी ऊंची हवा रही होगी । तार पर सूखते कपड़े बेतहाशा फड़फड़ा रहे थे । छतों पर पीली धूल की छत थी और आकाश कहीं न था ।... नीचे कुत्ते भौंक रहे थे । मकान मालकिन मिसेज पंत लहंगा पहन कर पेड़ों के नीचे घूम रही थी, कुत्तों के पीछे दौड़ रही थीं, उन्हें अपने पास बुला रही थीं । वे बदहवास होकर कभी फाटक की ओर भागते थे, कभी पेड़ों की तरफ - जैसे आंधी कोई हमलावर हो, जिसे वे मकान की सरहद पर रोक लेंगे, दांतों को भींच कर टुकड़े-टुकड़े कर देंगे । किन्तु हवा उन्हें चिढ़ाती हुई पेड़ों पर चढ़ जाती, भड़ाभड़ घर के दरवाजे खोल देती, सहसा मुड़ कर बरामदे में लपक जाती और पत्तों के साथ पागल सी घूमने लगती । उसके साथ कुत्ते भी घूम रहे थे, कभी-कभी अचानक ठहर जाते, हैरानी से मिसेज पंत के लहंगे को देखने लगते जो हवा में गुब्बारे सा फूल रहा था - और वे आंधी को छोड़ कर खुद अपनी मालकिन पर भौंकने लगते ।[1]

निर्मल वर्मा ने कहीं कहीं अमूर्त भावों को भी ठोस अभिव्यक्ति देने की चेष्टा की है । हम एक उदाहरण लेते हैं, जिसमें सिर चकराने पर क्या दशा होती है, उसे मूर्त रूप देने की सफल चेष्टा की गई है - सुबह में ठीक था, किन्तु अब सिर चकराता है, मानो कनपटियों में धुएं की दो लकीरें ऊपर उठती हुई सिर के बीचों बीच मिलने की चेष्टा कर रही हों और बीच में रूई का एक घुटा-घुटा-सा बादल इन दोनों के बीच आकर अड़ गया हो ।[2] हम मनःस्थिति के ही एक और भी बिम्ब को लेंगे - जिसमें एक बेहोश आदमी के होश में आने की

---

1. निर्मल वर्मा - एक चिथड़ा सुख, पृ० 21
2. निर्मल वर्मा - परिन्दे, पृ० 85

प्रक्रिया को मूर्त रूप दिया गया है - मेरी आंखें खुलती हैं । अन्धेरे का एक नीला दरिया मेरे सामने से गुजर जाता है और उसके परे लाल, हरे गुलाबी धब्बे तिरते जाते हैं ।[1] वे बिम्ब-निर्माण-प्रक्रिया में कुछ नितान्त असंभव-से दीखते विशेषणों का प्रयोग करते हैं । लेकिन इन विशेषणों की सबसे बड़ी विशेषतायह है कि वे बिम्ब-निर्माण में न सिर्फ सहायक होते हैं, बल्कि उनकी उपस्थिति अनिवार्य होती है, इतनी अनिवार्य कि यदि उन्हें हटा लिया जाय तो वे बिम्ब उतनी सार्थक मूर्तिमत्ता अख्तियार कर सकने में समर्थ नहीं होंगे । उनकी बिम्ब-निर्माण-प्रक्रिया में प्रयुक्त कुछ इस प्रकार केविशेषणों के उदाहरण के रूप में हम द्रव्य कुहासा, भुतैली-सी थकी-थकी चांदनी, गर्म-गर्म-सी गंध, बोझिल चुप्पी, धुंधली रोशनी, मुलायम धूप, नरम अन्धेरा आदि को गिना सकते हैं ।

चूंकि निर्मल के यहां परंपरागत वातावरण-चित्रण नहीं है, बल्कि बिम्बों की सजग निर्माण-प्रक्रिया है और बिम्ब भी ऐसे जो सर्वथा नये हैं, इसलिए उन बिम्बों का ग्रहण या इन्द्रियास्वाद सहज सुलभ नहीं है, लेकिन यह बहुत कठिन भी नहीं है, असंभव तो बिलकुल नही, यदि हम अपनी संवेदना को अपनी इन्द्रियानुभूति को सजग एवं अपनी कल्पना-शक्ति को सक्रिय रख सकें ।

रचनाकार प्रतीकों का प्रयोग अव्यक्त एवं सूक्ष्म अनुभूतियों को मूर्त अभिव्यक्ति देने के लिए, उन्हें एक विशाल परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने के लिए रचना को मार्मिक एवं प्रभावोत्पादक बनाने के लिए तथा अभिव्यंजना में नूतन प्रयोग कर सौन्दर्यानुभूति को अभिव्यक्त एवं विकसित

---

1. निर्मल वर्मा - जलती झाड़ी, पृ० 135

करने के लिए करते हैं । प्रतीकवाद की शरुआत फ्रांस मेंहुई थी । प्रमुख प्रतीकवादियों में मलार्मे एवं रेम्बो के नाम गिनाये जा सकते हैं । रिल्के, कीट्स एवं व्हिटमेन पर इसका गहरा प्रभाव रहा है । हिन्दी में प्रतीकों के प्रति सर्वाधिक आग्रह अज्ञेय जी में देखने को मिलता है ।

निर्मल की कहानियां आद्योपांत प्रतीकवादी आग्रहों से ग्रस्त कहीं भी नहीं हैं, लेकिन उनकी कहानियों में प्रतीकों के बहुत सार्थक प्रयोग देखने को मिलते हैं जो सूक्ष्म संवेदनों को मूर्त अभिव्यक्ति देने में समर्थ हैं ।

हमें `परिन्दे ` कहानी संग्रह से ही प्रतीकों के सार्थक प्रयोग दीखने लगते हैं । अक्सर उनकी कहानियों के शीर्षक प्रतीकात्मक हुआ करते हैं, जैसे `डायरी का खेल`, `अंधेरे में `, परिन्दे`, `जलती झाड़ी`, `दहलीज़`, `धागे` और `वीक एंड` इत्यादि । प्रतीकात्मक शीर्षक हमारी बौद्धिकतापूर्ण पाठकीय जिज्ञासा को जागृत करते हैं और हम उन कहानियों की संवेदना को गंभीरता से पकड़ने के लिए अग्रसर होते हैं ।

निर्मल की कोई भी कहानी आद्योपान्त प्रतीक-शैली में नहीं लिखी गयी है । प्रतीक-शैली में न सिर्फ स्थान एवं काल ही प्रतीकात्मक होते हैं, बल्कि पात्र भी प्रतीक रूप ही होते है । लेकिन इन कहानियों में हमें प्रतीकों के प्रयोग प्राय: देखने को मिलते हैं । ये प्रतीक किसी घटना, दृश्य या स्थिति के माध्यम से पात्रों की किसी अत्यन्त जटिल एवं सूक्ष्म मन:स्थिति को अभिव्यक्त करते हैं ।

ये प्रतीक परंपरा से लिए गये घिसे-पिटे सांस्कृतिक, धार्मिक या साहित्यिक प्रतीक नहीं होते । कहानीकार नये संदर्भ के अनुसार ही

सर्वथा नये प्रतीकों का प्रयोग करता है, लेकिन ये खुदा के सौवें नाम की तरह अबूझ भी नहीं होते । इनको ग्रहण करना आसान है, बशर्ते कि पाठक को एक साहित्यिक संस्कार प्राप्त हो - वह परिष्कृत मानसिकता की एक विशिष्ट ऊंचाई तक पहुंचा हुआ हो ।

उनकी कहानी `डायरी का खेल` की केन्द्रीय पात्रा `बिट्टा` तपेदिक की मरीज है । उसका मस्तिष्क जैसे हर वक्त मृत्यु से घिरा रहता है । वह एक बार बब्बू से कहती है, `एक दफा शिमले में हम पहाड़ पर चढ़े थे, ऊपर से नीचे देखो तो सिर चकराने लगता है । ऐसा लगता है जैसे ऊंची चोटी पर हम अचानक हवा में घुल जायेंगे और कोई हमारी थाह नहीं पा सकेगा ।`[1] बिट्टो का यह संवाद उसके मन में घर कर गयी मृत्यु-भय की भावना को द्योतित करता है । यहां हवा में घुलने का भय वास्तव में मृत्यु-भय का ही प्रतीक है ।

उनकी `परिन्दे` कहानी तो अपनी प्रतीकात्मकता के लिए बहु-चर्चित रही है । इस कहानी की केन्द्रीय पात्रा लतिका उड़ते हुए परिन्दों को देख कर सोचती है, `हर साल सर्दी की छुट्टियों से पहले ये परिन्दे मैदानों की ओर उड़ते हैं । कुछ दिनों के लिए बीच के इस पहाड़ी स्टेशन पर बसेरा करते हैं, प्रतीक्षा करते हैं, बर्फ के दिनों की, जब वे नीचे अजनबी, अनजाने देशों में उड़ जायेंगे, क्या वे सब भी प्रतीक्षा कर रहे हैं ? वह, डाक्टर मुकर्जी, मि० ह्यूबर्ट - लेकिन कहां के लिए, हम कहां जायेंगे ?`[2]

---

1. निर्मल वर्मा - परिन्दे, पृ० 22
2. वही, पृ० 169

इस कहानी में परिन्दों का प्रतीकात्मक महत्व बहुत ज्यादा है । इनके माध्यम से कहानीकार ने लतिका, ह्यूबर्ट और डा. मुकर्जी के जीवन की विवशतापूर्ण नियति को अत्यन्त सफलतापूर्वक चित्रित किया है । इन पात्रों को ही नहीं, बल्कि वर्तमान मानव-जीवन की समग्र नियति को यह कहानी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति देती है ।

`जलती झाड़ी` कहानी में आज के संबंधों में व्याप्त परायेपन को प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति मिली है । यह परायापन, अजनबीपन इस कदर बढ़ गया है कि `काम` एवं `प्रेम` जैसे तीव्र सम्बन्धों में भी यह समाप्त नहीं होता । `दहलीज` कहानी में दहलीज रूनी नाम की एक लड़की की वय:संधि का प्रतीक है । रूनी सोचती है शम्मीभाई उससे प्रेम करें, लेकिन वह उसकी बड़ी बहन जैली से प्रेम करते हैं । वह जब जैली के पांव के नीचे `जैली लव` लिख देते हैं तो वह हताश होकर घर लौट आती है । उसे महसूस होता है उसके पीले चेहरे पर एक रेखा खिंच आयी... मानो वह दहलीज़ हो । जिसके पीछे बचपन सदा के लिए छूट गया हो... ।[1]

`पिछली गर्मियों में ` संग्रह में निर्मल ने सर्वाधिक प्रतीकों का प्रयोग किया है । इस संग्रह की पहली कहानी `धागे ` में धागे केशी, मीनू, रूनी और उसके पति के बीच के सम्बन्धों के प्रतीक हैं, जो धीरे धीरे टूट रहे हैं । इसी कहानी में रूनी सिमिट्री के एक अंग्रेज़ पहरेदार के एक वाक्य को उद्धृत करती है - सो देट द डेड मे लाइ इन पीस ।`[2]

---

1. निर्मल वर्मा - जलती झाड़ी, पृ0 104
2. निर्मल वर्मा - पिछली गर्मियों में - पृ0 81

निर्मल ने अपनी कहानियों में प्रतीकों के माध्यम से सूक्ष्म एवं जटिल अनुभूतियों को सफलतापूर्वक अभिव्यक्ति दी है । अभिव्यक्ति के नये-नये प्रयोग करके सौन्दर्य की उद्भावना की है, साथ ही साथ भाषा को एक सूक्ष्म अर्थवत्ता भी दी है ।

निर्मल वर्मा के शिल्प-विधान केअन्तर्गत जहां घटना-विहीनता, बिम्बात्मकता, प्रतीकात्मकता, सांकेतिकता आदि की चर्चा की जाये, वहां उनके द्वारा अपनायी गयी कुछ उन रचना-रीतियों की चर्चा भी अनिवार्य है, जिनके द्वारा उन्होंने कहानियों के सौन्दर्य की अभिवृद्धि की है ।

निर्मल लिखते हैं, 'उन पहाड़ों को देखते हुए मुझे अक्सर प्रूस्त की दो दुनियाएं याद आती थीं । एक वह दुनिया है - जिसमें समय है - भ्रम, पीड़ा और मृत्यु । दूसरी दुनिया वह है जिसमें सब कुछ शाश्वत है, कालातीत, वह सौन्दर्य, शांति और स्वतंत्रता की दुनिया । हमारे सामान्य अनुभव समय की दुनिया में होते हैं । लेकिन ध्यान और स्मृति के क्षणों में दूसरी दुनिया की भी झलक मिल जाती है ।[1]

इसी विशेषता को ध्यान में रखते हुए प्रभात कुमार त्रिपाठी लिखते हैं, 'आम तौर पर हिन्दी की अधिकांश कहानियों में स्मृति का इस्तेमाल है - निर्मल के यहां स्मृति को जीने की कोशिश -'रिक्लेक्शन' नहीं 'मेमोरी' है । इसलिए कहना मुश्किल है, निर्मल की कहानियों में उन के पात्र महत्वपूर्ण हैं या वे दृश्य जिनमें रोजमर्रा की जिन्दगी की

---

1. शब्द और स्मृति - निर्मल वर्मा पृ0 12

बहुत छोटी छोटी चीजें, एक आत्मीय लय के साथ मन के भीतर खुलती हैं ।"[1]

निर्मल के यहां स्मृतियों के कई स्तर देखने को मिलते हैं । उनके यहां स्मृतियों के माध्यम से न सिर्फ अतीत को उद्घाटित किया जाता है, बल्कि कहीं-कहीं स्मृतियों से छूटने की कोशिश भी दिखलाई पड़ती है, जैसे `परिन्दे` में ।

विचारोत्तेजक प्रलाप में केवल चिंतन को ही अभिव्यक्त किया जाता है । लेकिन चिंतन के सूत्र प्राय: बिखरे हुए होते हैं । इस पद्धति में हिन्दी में बहुत कम कहानियां लिखी गयी हैं । निर्मल ने भी इस पद्धति में सिर्फ एक ही कहानी लिखी है - `डेढ़ इंच ऊपर` ।

एक कहानी में कई कथाओं की पद्धति का इस्तेमाल हमें विशेष तौर पर निर्मल की `आकांक्षा` कहानी में देखने को मिलता है । इस में एक तरफ तो एक दूसरे से ऊबे हुए पति-पत्नी की कहानी है, जो एक बार में बैठे हैं । दोनों एक दूसरे के प्रति चुप थे । चुप्पी जो अखरती नहीं और आसपास की हलचल से अलग रहती है ।[2] दूसरी तरफ दो फौजी जवानों की कहानी है, जिसमें से एक उस अधेड़ महिला से बातचीत करने की कोशिश करता है, जो उसे आकर्षक नहीं लगी थी और दूसरा एक जिप्सी लड़की को किसी ऐसी एकान्त जगह में ले जाने की कोशिश करता है, जहां उन दोनों के अतिरिक्त कोई न हो । तीसरी तरफ बैंड-मास्टर की कहानी है । ये सभी पात्र ऊबे हुए हैं ।

---

1. पूर्वग्रह अंक 27-28 - निर्मल वर्मा, पृ0 47
2. निर्मल वर्मा - पिछली गर्मियों में, पृ0 109

निर्मल की कहानियों की कलात्मक बुनावट, मन: स्थितियों को व्यक्त करने की शक्ति तथा भाषा और अभिव्यक्ति का सामर्थ्य उन्हें एक महत्वपूर्ण नये लेखक की भूमिका में खड़ा करता है ।[1]

कृष्णा सोबती लिखती हैं, 'निर्मल का पूरा मिजाज 'टेम्परामेंट' कवि मन का है । वही 'इंटेन्सिटी, वही रूमानियत, वही अधखुली आंखों से यथार्थ को अबूर कर डालने की लापरवाही ।'[2] उनकी कहानियों की 'थीम' के अनुकूल ही उनकी भाषा भी अत्यन्त संवेदनशील है ।

वे ठीक कवियों की ही भांति शब्द और अर्थ को लेकर चिंतित होते हैं । हमारा खयाल है कि वे कविता ही की भांति कहानी के लिए भी मानते हैं कि कहानी भाषा के द्वारा नहीं, बल्कि शब्दों के द्वारा रची जाती है । इस प्रकार की शब्द चेतना सिर्फ इसी बात की द्योतक नहीं है कि वे कविता के निकट हैं, बल्कि इस बात की भी द्योतक है कि वे एक समृद्ध संवेदनशीलता के मालिक हैं ।

निर्मल अक्सर किसी संवेदन का नाम नहीं लेते, बल्कि उसे पूरे-का पूरा शब्दों में उतार देने की कोशिश करते हैं और उनका भाषा-सामर्थ्य इतना अधिक है कि वे संवेदनों को हूबहू चित्रित करने में सफल भी होते हैं । उनकी कहानी 'तीसरा गवाह' का एक गद्यांश उदाहरण के लिए लेते हैं, जहां वे अपने भाषा-प्रयोग के वैशिष्ट्य से नीरजा के जीवन

---

1. शिवप्रसाद सिंह - आधुनिक परिवेश और नवलेखन, पृ० 203
2. कृष्णा सोबती - हम हशमत, पृ० 15

के सूनेपन के विराट परिदृश्य को कुछ ही शब्दों में अभिव्यक्त कर देते हैं, साथ ही साथ रोहतगी के उससे अलगाव को भी -`कहीं कोई अदृश्य दर `जा था, जिसके पीछे नीरजा ने अपनी सूनी अकेली घड़ियों को जोड़-जोड़कर एक अपना अलग स्वप्न-जगत बना लिया था, जहां वह दिन-रात सोये हुए प्राणी की तरह चलती रहती थी । मुझे लगता, जैसे मैं हमेशा उस दरवाजे से बाहर खड़ा रहा हूं ।`[1]

निर्मल के इस सामर्थ्य का हमें `परिन्दे` से लेकर `बीच बहस में ` तक अनवरत दर्शन होता है ।

निर्मल की भाषा उपलब्धि के दंभ की नहीं, खोज और अनुभव की भाषा है ।[2] निर्मल वर्मा ने अपनी संवेदनासे ही बाध्य होकर न सिर्फ परंपरागत शिल्प को ही तोड़ा है, कहानी कला के प्रचलित दायरे को भी तोड़ा है । उनकी अन्वेषणाधर्मिता उन्हें निरन्तर प्रयोग के लिए उकसाती रही । उन्होंने इस सिलसिले में शब्द की अभेद्य दीवार को लांघ कर शब्द के पहले `मौन जगत्` में प्रवेश करने का भी प्रयत्न किया ।[3]

निर्मल में जिस तरह कहानी के अन्य सभी उपांगों का इस्तेमाल गहरी कला-संचेतना के तहत आयाससहित होता है, उसी प्रकार मुहावरों का प्रयोग भी सायास ही होता है, लेकिन जहां वे प्रयुक्त होते हैं, वे अत्यन्त स्वाभाविक एवं अनिवार्य नजर आते हैं ।

---

1. कृष्णा सोबती - हम हशमत, पृ0 13
2. प्रभात कुमार त्रिपाठी - पूर्वग्रह - अंक 27-28, पृ0 49
3. नामवर सिंह - कहानी : नयी कहानी, पृ0 83

उनकी कहानियों में जिस चीज का सर्वथा अभाव पाया जाता है, वह है स्थूलता । उनकी भाषा-शैली जितना कहने की शैली है, उससे भी कहीं ज्यादा पाठकीय संवेदना के भरोसे पर अनकहे ही छोड़ देने की शैली है । उनकी भाषा-शैली अत्यन्त सांकेतिक है । इस सांकेतिकता का आग्रह यह होता है कि हम उच्च पाठकीय संवेदना के साथ उन कहानियों के पास जायें । तभी उनका आस्वाद संभव है ।

ग्रन्थानुक्रमणिका

हिन्दी पुस्तकें

1. शब्द और स्मृति : निर्मल वर्मा
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,
तीसरा संस्करण, 1995

2. कला का जोखिम : निर्मल वर्मा
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,
दूसरा संस्करण, 1984

3. ढलान से उतरते हुए : निर्मल वर्मा
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,
दूसरा संस्करण, 1988

4. भारत और यूरोप : निर्मल वर्मा
प्रतिश्रुति के क्षेत्र : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,
1991

5. इतिहास, स्मृति, आकांक्षा : निर्मल वर्मा
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई
दिल्ली, 1992

6. चीड़ों पर चांदनी : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,
1993

7. धुंध से उठती धुन : निर्मल वर्मा
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997

8. हर बारिश में : निर्मल वर्मा
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1989

9. कहानी, नई कहानी : नामवर सिंह
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1973

10. रचना और आलोचना : देवीशंकर अवस्थी
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995

11. नई कहानी की भूमिका : कमलेश्वर
शब्दकार, नई दिल्ली, 1978

12. हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव : भारत भूषण अग्रवाल
कृष्णचरण, नई दिल्ली, 1971

13. आधुनिकता के पहलू : विपिनकुमार अग्रवाल
मैकमिलन एंड कं०, नई दिल्ली, 1964

14. कहानी : स्वरूप और संवेदना : राजेन्द्र यादव,
अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1978

15. एक कथा : समानान्तर : राजेन्द्र यादव
राजाधृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1984

16. हिन्दी कहानी : पहचान और परख : इन्द्रनाथ मदान
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981

17. हिन्दी कहानी : एक नई दिल्ली : इन्द्रनाथ मदान
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1979

18. सर्जना और संदर्भ : अज्ञेय
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1985

19. साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि : मोहन राकेश
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1975

20. हिन्दी उपन्यास और प्रेम सम्बन्ध : विजय मोहन सिंह
नील कंठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995

21. जनान्तिक : नेमिचन्द्र जैन
संभावना, हापुड़, 1981

22. संवाद और एकालाप : मलयज
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1984

23. सृजनशीलता का संकट : नित्यानन्द तिवारी
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991

24. अनुभव का भव : नन्द किशोर आचार्य
वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर 1994

25. आधुनिक साहित्य और इतिहास बोध : नित्यानन्द तिवारी
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996

26. भारतीय परम्परा के मूल स्वर : गोविन्द चन्द्र पाण्डेय
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 1993

27. काम, प्रेम और परिवार : जैनेन्द्र
पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली

28. आधुनिकता के बारे में तीन अध्याय : धनंजय वर्मा
विद्या प्रकाशन मंदिर, नई दिल्ली, 1986

29. कथा समय : विजय मोहन सिंह
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994

30. निर्मल वर्मा : सृजन और चिंतन : (सं०) प्रेम सिंह
फिफ्थ डायमेंशन, नई दिल्ली, 1989

31. निर्मल वर्मा — अशोक वाजपेयी
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994

32. कहानी : संवाद का तीसरा आयाम — बटरोही
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

33. आलोचना भी रचना है — काशीनाथ सिंह
प्रतिमान प्रकाशन, इलाहाबाद

पत्रिका

आलोचना (पत्रिका) — जुलाई-सितम्बर, 1989
सम्पादक - नामवर सिंह

अंग्रेजी पुस्तकें

1. Love and Human Separateness : Ilham Dilman, OUP, U.K. 87

2. Introducgtion to IndianArt : Anand K. Kumarswami, Munshiram Manoharlal, Delhi, 1984

3. Mythologies : Roland Barthes, New York, 1972.

4. Locvers discourse, Rolland Barthes, Penguin, India 1998.

5. History of Sexuality : 4 volumes, M. Fuccoult.

6. Intimate Relations : Sudhir Kakkar, OUP, New Delhi, 1983.

7. Literary Theory : Terry Eaglaton, England, 1983.

8. Modernism : Malcom Broddury & James McFarlane, Penguin Books, Reprinted, 1985.

9. Illuminations : Walter Benjamin, Ed. Areudt, Gresgow, Collins.

10. Essays on Colonial History : K. Sangari and S. Vaid, Ed., Kali for Women, New Delhi.

11. Realism and Reality : Novel and Society in India : Meenakshi Mukherjee, OUP, New Delhi.

12. Women Writing in India, Vol I and II, Tharu, S. and Lalitha, OUP, New Delhi, 1985.

13. The Culture of Pastiche : Jaidev, I.I. of Advanced Study Shimla, 1993.

14. Western Impact and Indian Response, Vol, 8 of A History of Indian Literature : Sisir Kumar Das, Sahitya Akademi, News Delhi, 1991.

**